सज्जनो ! इसको अवश्य पढो !

इस पुस्तकको छपे करीबन एक साल हो गया, परन्तु इस पुस्तकमें पूछे हुए ७१ प्रश्नोंके उत्तर, अभी तक किसी तेरापंथी महाशयकी तरफसे नहीं मिले। अतएव पुनः सूचना की जाती है कि-उन लोगोंको चाहिये कि-वे, अपने माने हुए ३२ सूत्रोंके मूल पाठों-से, सभ्यताके साथ, इन प्रश्नोंके उत्तर दे करके, अपनी इज्जत पर लगी हुई कालिमाको दूर करें।

भूमिका।

इस पुस्तकमें भूमिकाकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पुस्तकके उपक्रममें ही भूमिका योग्य वक्तव्य कह दिया है। तिसपर भी इस पुस्तककी रचनाके विषयमें एकाध बात, यहाँ कह देनी समुचित समझता हूँ।

यह नियम है कि–'कारणके सिवाय कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती।' इस पुस्तकके निर्माणमें भी कुछ न कुछ कारण तो जरूर ही है।

संसारमें ऐसा भी एक मत है, जो कि दया–दान–मूर्तिपूजाको नहीं मानता है। इस मतका नाम है तेरापंथ–मत। इसकी प्रसिद्धि प्रायःकरके राजपूताना–मारवाडमें अधिक है। और तेरापंथी साधुओंका अधिकतर विचरना वहाँ ही होता है, जहाँ हमारे संवेगी साधुओंका विचरना बहुत कम, बल्कि नहीं होता है। ऐसे क्षेत्रोंमें, हजारों भोले मनुष्य, इन साधुओंके उपरि आडंबरसे फँस जाते हैं। इस लिये मेरा कई दिनोंसे इरादा था कि–'तेरापंथी–मतके विषयमें एक पुस्तक लिखुं, और इन्होंने शास्त्रके विरुद्ध की हुई कल्पनाएं, तथा जिनागमके असल सिद्धान्त (दया–दान) को मूलसे उखाड दिया है, वगैरह इनके, दुर्गतिमें ले जानेवाले मन्तव्योंकी तस्वीर दुनियाको दिखलाउँ।' ऐसे विचारमें थाही, इतनेमें पाली–मारवाडमें, हमारे परमपूज्य प्रातःस्मरणीय

गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्यश्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज, तथा इतिहासतत्त्वमहोदधि उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजका पधारना हुआ, उस समय वहाँ के तेरापंथियोंने आपसे चार दिन तक चर्चा की। अन्तमें वे लोग निरुत्तर हो गये, तब उन्होंने तेईस प्रश्नोंका एक चिट्ठा दिया, और उनके उत्तर मांगे।

बस, इसी निमित्तको लेकरके, उनके तेईस प्रश्नोके उत्तरोंके साथ इस पुस्तकके निर्माण करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

इस पुस्तकमें तेरापंथी मतकी उत्पत्ति; उसके मन्तव्योंके देनेके बाद पालीकी चर्चाका संपूर्ण वृत्तान्त तथा उनके पूछे हुए तेईस प्रश्नोंके उत्तर दिये गये हैं। और अन्तमें तेरापंथियोंसे ७५ प्रश्नोंके उत्तर उनके माने हुए ३२ सूत्रोंके मूल पाठोंसे मांगे हैं।

मुझे इस वातके कथन करनेमें संकोच उपस्थित नहीं होता है कि–इस पुस्तकके पढनेमें लोगोंकी अभि रुचि अवश्य बढी है। क्योंकि इसका यही प्रमाण है कि–प्रकाशकको, इसकी दूसरी आवृत्तिके प्रसिद्ध करनेका समय शीघ्र ही प्राप्त हुआ है।

मैं आशा करता हूँ कि तेरापंथि मतके विषयमें, बिलकुल संक्षेपसे लिखी हुई इस पुस्तकको पढ करके, तेरापंथी तथा इतर महानुभाव अवश्य लाभ उठावेंगे।

उदयपुर (मेवाड)
आश्विन शुदि १५ वीर सं. २४४१ } विद्याविजय.

॥ अर्हम् ॥

श्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथ-मत समीक्षा ।

पंचमकालका प्रभावही ऐसा है कि-ज्यों ज्यों काल जाता है, त्यों २ एक के पीछे एक, ऐसे मतमतान्तर बढते ही जाते हैं। देखिये, जिन्होंने महावीर देवके शासनका स्वीकार नहीं किया, उन्होंने अपनी खिचडी अलग ही पकानी शुरु कर दी। जैसे महावीर-देवके शासनबाह्य निह्नवोंकी कथाएं तो सुप्रसिद्ध ही हैं। तदनन्तर वि. सं. १५०८ में लोंका लेखकने, जोकि गृहस्थ था, लुंपकमत चलाया। और लोगोंको बहकाकर विपरीत मार्गपर ले जानेके लिये खूब ही प्रयत्न किया। इसके बाद १७०९ में, इसी लोंका लेखकके चलाए हुए मतमेंसे लवजी ऋषिने ढूंढक पंथ (स्थानकवासी) निकाला। जिसने मूर्तिपूजन वगैरहका निषेध किया। इसकी सिद्धिके लिये, सूत्रोंमे जहाँ २ मूर्तिपूजाका अधिकार आया, उसके अर्थोंको बदलनेमें बहादुरीकी। तदनन्तर इसी ढूंढक पंथमेंसे एक 'तेरापंथी' मत निकला कि जिसकी समीक्षा करना, आजके लेखका प्रधान उद्देश्य है। इस पुस्तकमें, पहिले तेरापंथ-मतकी उत्पत्ति, उसके मन्तव्य, पाली

(मारवाड)में जो चर्चा हुई, उसका सारा वृत्तान्त, तेरापंथीके तेईस प्रश्नोंके उत्तर और अन्तमें तेरापंथियोंसे पूछे गये प्रश्न भी लिख दिये गये हैं। आशा है पाठक, इसको ध्यान पूर्वक पढेंगे।

तेरापंथ-मतकी उत्पत्ति।

यह पंथ १८१८ की सालमें शुरु हुआ है। इसकी उत्पत्ति इस तरह हुईः—

" संवत् १८०८ की सालके लगभगमें मारवाडमें ढूंढक बाईस टोलेके, रुघनाथजी नामक साधु, अपने शिष्योंके साथ विचरते थे। इनके पासमें सोजत-बगडीके नजदीक कंटालीए के रहने वाले भिखुनजी नामक ओसवालने दीक्षा ली। किसी समयमें रुघनाथजी, मेडतेमें भिखुनजीको श्रीभगवती सूत्र पढाते थे। यद्यपि भिखुनजीकी बुद्धि कुछ तीक्ष्णथी, परन्तु विचार-शक्ति उलटी होनेसे बहुतसी बातोंमें इन्हें विपरीतता मालूम होने लगी। इसकी चेष्टा सामतमल धारीलाल श्रावक जान गया। इस श्रावकने रुघनाथजीसे कहाः– ' आप इसको भगवती सूत्र पढा रहे हैं, परन्तु यह तो ' पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ' जैसा होता है। यह आगे जा करके निह्नव होगा। और उत्सूत्र प्ररूपणा करेगा। '

रुघनाथजीने कहाः–' पहिले भी श्रीवीरभगवानने गोशालेको बचाया है। जमालीको भी पढाया और निह्नव हुआ तो क्या किया गया ? अपने २ कर्मानुसार हुआ करता है। इसका भी कर्मानुसार जो भावि—होनहार होगा सो होही जायगा। ' इस तरह कह करके उन्होंने भगवती तो

पूरी कराई। चोमासेके समाप्त होनेपर भिखुनजी उस भगवती-जीके पुस्तकको ले करके चलने लगे। तब रुघनाथजीने कहाः-' पुस्तक छोडते जाओ। ' परन्तु भिखुनजी तो लेकरके ही चले। पीछेसे दो साधुओंको भेज करके रुघनाथजीने वह पुस्तक मंगवा ली। बस! इसीसे आपके हृदय मंदिरमें क्रोधाग्नि प्रज्वलित भी हो गई और आपने यह निश्चय भी करलिया कि-' मैं नया मत निकालुं और रुघनाथजीको कष्ट दूँ। ' अस्तु!

आपने मेडतेसे विहार करके मेवाडमें आकरके राजनगरमें चातुर्मास किया। यहाँपर सागर गच्छके यतिका एक भंडार था। उस भंडारमेंसे श्रावक लोग उसको, जो चाहिये सो पुस्तकें देने लगे। परन्तु ठीक है। स्याद्वाद शैलीयुक्त, अनंतनयात्मक श्रीजिनवचनके सच्चे रहस्यको, समुद्र समान गंभीर बुद्धिवाला भी गुरुगमताके सिवाय, प्राप्त नहीं कर सकता है, तो भिखुनजी जैसे, अव्वल तो मूर्तिके उत्थापक, गुरुगमताका नामो निशान नहीं, और फिर टब्बा-टब्बी-से काम लेनेवालेको, सच्चा रहस्य न मिले और वैपरीत्य पैदा हो, तो इसमें कोई आश्चर्यकी वात नहीं।

ठीक हुआ भी वैसाही। ज्यों २ भिखुनजी अपने आप-से पढता गया त्यों २ उसके ऊपर अनेक प्रकारकी शंकाएं और कुतर्क सवार होने लगे। अन्तमें अविधिसे सूत्र पढनेका प्रभाव, भिखुनजीके ऊपर बराबर पडा। भिखुनजीने पहिले पहल इस दयाका ही शिरच्छेद किया, जो कि जिन शासनका प्रधान मंत्र है-जिन शासनका प्रधान उद्देश्य है। भिखुनजी ने इस प्रकारकी प्ररूपणा कीः--

'साधु-मुनिराज किसी त्रस-स्थावर जीवको हणे नहीं, हणावे नहीं और अन्य कोई हणे उसकी अनुमोदना करे नहीं। किसीने किसी जीवको बांधा हो, तो साधु छोडे नहीं, छोडावे नहीं, और छोडे उसको अच्छा जाने नहीं। यह साधुका आचार है। इसी तरह श्रावक भी तीर्थंकरके छोटे पुत्र हैं, इस लिये वे भी कोई कीसी जीवको मारता हो तो, उस जीवको छोडे नहीं, छोडावे नहीं और छोडे उसकी अनुमोदना करे नहीं। इसमें कारण यह दिखलाया कि-यदि कोई शख्स, किसी जीवको मारता हो, और उसको छुडाया जाय, तो प्रथम तो अंतराय दोष लगेगा। तथा छुडानेके वाद वह जीव हिंसा करेगा, मैथुन सेवेगा, पत्र-पुष्प-फल तोडेगा, भक्षण करेगा वगैरह सब पाप छुडानेवालेके सिर लगते हैं। अर्थात् जैसे किसी वंडेमें गाय-वेल वगैरह भरे हुए हैं, और उसके पास आग्नि लगी हो, तो उस वंडेका दरवाजा खोल करके उन जानवरोंको वाहर नहीं निकालने चाहियें। क्योंकि-उनको निकालेंगे तो वे गाय-वैल वगैरह पशु मैथुन सेवेंगे-हिंसा करेंगे वह पाप दरवाजे खोलनेवालेके सिर पर है। इसके उपरान्त यह भी परूपणाकी कि-साधुके सिवाय कोई संयति नहीं है। अतएव, सिवाय साधुके और किसीको देनेमें निर्जरा या पुण्य होता ही नहीं है।'

इस प्रकार भिखुनजीने दया और दानका निषेध किया।

इस परूपणामें चार मनुष्य प्रधान थे। भीखुनजी तथा जयमलजीका चेला वखताजी, ये दो साधु तथा वच्छराज ओसवाल और लालजी पोरवाल, ये दो गृहस्थ। इन चारोंने मिल करके यह परूपणाकी।

चातुर्मास उतरनेके बाद भीखुनजी, अपने गुरु रुघनाथ-जीके पास सोजत आए । रुघनाथजी पहिलेसे जान गए थे कि-इसने ऐसी प्ररूपणाकी है। इस लिये उसका कुछ सत्कार नहीं किया । आहार भी साथमें नहीं किया । तब भीखुनजीने अपने गुरूसे कहाः-मेरा क्या अपराध है ? रुघनाथजीने कहाः-तुमने उत्सूत्रप्ररूपणाकी, रुघनाथजीने उसको समझाया किः-'यह तुम्हारी कल्पना, बिलकुल शास्त्र और व्यवहार दोनोंसे विरुद्ध है । यदि ऐसा ही हो तो धर्मके मूल अंगभूत दया और दान दोनों खंडित क्या ? सर्वथा उठही जायेंगे। और जब ये दोनों उठ गए तो फिर मोक्ष मार्गका अभाव ही हो जायगा। अन्तमें क्रमशः सर्वथा नास्तिकताकी नोबत आ जायगी। अत एव तुमने जो अरिहंतोंके अभिप्रायसे विरुद्ध प्ररूपणाकी है, उसका प्रायश्चित लेलो और आयंदे ऐसा न हो, ऐसा निश्चय करो ।

भीखुनजीके अन्तःकरणमें इस बातकी जरा भी असर न पहूँची, परन्तु इसने अपने मनमें विचार कियाः-' यदि इस समय मैं अपने मानसिक विचार प्रकट कर दूँगा तो ये गुरुजी मुझे समुदायसे बाहर निकाल देंगे। और अभी मैं बाहर हो करके अपना टोला नहीं जमा सकता हूँ । क्योंकि-अभी मेरे पास वैसे सहायक नहीं हैं, जैसे चाहियें । अत एव अभी तो गुरुजी जो कुछ कहें, स्वीकार ही कर लेना उचित है '। ऐसा विचार करके दंभ मिषं भिखुनजीने कहा-' हे स्वामिन् ! मेरी भूल आपने कही इससे मैं क्षमापात्र हूँ। आप जो कुछ प्रायश्चित्त दें, मैं लेनेके लिये तय्यार हूँ' । गुरुने छमासी प्रायश्चित्त दिया (किसी २ जगह दो दफे प्रायश्चित्त लेना लिखा है) यह सब

हुआ, परन्तु भीखमजीके चेले भारमकने श्रद्धा छोडी नहीं। पश्चात् रुघनाथजीने भिखुनजीसे कहाः—

' बगडीमें वखताजी ढुंढिये, वच्छराजमजी ओसवाल, राजनगरके श्रावक लालजी पोरवाड, इन तीनोंकी तुमने श्रद्धा हटाई है, इस लिये तुम वहाँ जाकरके ठिकाने लाओ। उन लोगोंको तुम ही समझा सकोगे, वहाँसे आप आज्ञा लेकरके बगडी आए। यहाँपर तो आपको 'लेने गई पूत तो खोआई खसम' जैसा हुआ। आएथे तो वखते ढूंढकको समझाने। परन्तु प्रत्युत वखता ढूंढिया आपहीको उपालम्भ (ठपका) देने लगा। वखता ढूंढकने कहाः- देखो! अपने सवने मिल करके यह ठीक कियाथा, और फिर तुमे तो रुगनाथजीके पास जाकरके फँस गए। यह क्या किया?'बस! ऐसे २ बहुतसे बचन सुना करके फिर चक्कर घुमाया। फिर दो चार महीने बाद भिखुनजी रुघनाथजीके पास आए। फिर भी आहार पाणी साथ नहीं किया। तब रुघनाथजीके भाई जेमलजीके पास भि· खुनजी गए। जेमलजीको और रुघनाथजीको द्वेष हुआ। छे महीने तक पंचायत होती रही। किन्तु अपना मत नहीं छोडा! भिखुनजीने अंदर अंदरसे साधुओंको और गृहस्थोंको अपने पक्षमें ले लिये थे। रुघनाथजीने प्रायश्चित्त लेकरके समुदायमें रहेनेको बहुत कुछ कहा। परन्तु अब वह कैसे मान सकताथा। क्योंकि उसके पक्षमें और भी लोग मिल गये थे। रुघनाथजीने बहुत कुछ समझाया, परन्तु नहीं समझा, तब ' बिगडा पान बिगाडे चोली, बिगडा साधु बिगाडे टोली ' इस नियमानुसार रुघनाथजीने उसको सं० १८१५ चैत्र शुदि ९ शुक्रवारके दिन

समुदायसे बाहर किया। (किसी २ जगह १८१८ लिखा है) भीखुनजी जब समुदायसे बाहर हुए तब वे बखतावर, रूपचन्द भरमल, गिरधर वगैरह बारह और वह मिलकर, तेरह आदमी निकले थे। बस! इसीसे 'तेरापंथ' ऐसा नाम पडा है। सुनते हैं रूपचन्द आदि दो साधु तो किसी कारणसे थोडे ही समयमें भिखुनजीको छोड कर, रुघनाथजीको मिल गये थे। "

बस। इस प्रकारसे 'तेरापंथ' की उत्पत्ति हुई है।

अब भिखुनजी ग्रामानुग्राम विचरने लगा। और खुल्लं-खुल्ला दया-दानका निषेध करने लगा। बहुतसे पंडित लोग उससे शास्त्रार्थ करके उसको पराजय करते थे। परन्तु गाढ मिथ्यात्वके प्रभावसे वह कैसे मान सकता था?। उसके अभिनिवेश-मिथ्यात्वरूप भूमिगृहमें पंडितोंके-विद्वानोंकी वचनरूप किरणें घुसने नहीं पाती थीं। जब भिखुनजी शास्त्रार्थमें किसीसे हार जाता था, तब वह कहता था:-'मेरी बुद्धिकी न्यूनतासे मैं पराजित होता हूं। परन्तु बात तो जो मैं कहता हूं वही सत्य है'। बस! ऐसी २ बातें करके अपने हठवादको नहीं छोडता था।

प्रियपाठक! तेरापंथके मूल उत्पादक भिखुनजीके दादे परदादे लोग सूत्रोंमेंसे 'मूर्त्ति' विषयक जो २ रकमें थीं उनकी तो चोरी कर ही चुके थे। अब भिखुनजीने मूल दो और बातोंका फेरफार किया। यह तो सब कोई समझ सकते हैं कि-वहीमेंसे एक दो रकमकी चोरी कोई करना चाहे तो उसको बहुत रकमोंका फेरफार करना पडता है। बस! इसी नियमानुसार दया और दान ये दो रकमें उडानेमें और किनकिन २ बातोंमें फेरफार करना पडा, तथा उसकी सिद्धिके लिये

उसको कैसे २ मन्तव्य प्रकट करने पडे यह सब बातें आगे चल करके आप पढेंगे ।

तेरापंथ–मतके मन्तव्य ।

तेरापंथियोंने ऐसे २ मन्तव्य प्रकाशित किये हैं, कि–जिनको सुन करके कैसाभी मनुष्य क्यों न हो, उनके प्रति सम्पूर्ण घृणाकी दृष्टिसे देखे विना नहीं रहेगा । बातभी ठीक ही है कि, जिन्होंने दया और दान ये दो परमसिद्धान्तोंकाही शिरच्छेद कर दिया है, वे लोग फिर क्या नहीं कर सकते हैं ? अस्तु ।

यहाँ पर उनके मन्तव्य दिखलाए जायँ, इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित समझता हूं ।

तेरापंथ–मतके उत्पादक भिखुनजीने जब दया और दान दोनोंको जडसे उखाड करके डाल दिये । तब उसके गुरु तथा और भी लोग समझातेथे कि–देखो, ‘महावीर देवने भी अनुकंपासे गोशालेको बचाया है’। जब उसकी एकभी न चली, तब ‘महावीरदेव भूले’ ऐसा कहना पडा । अन्तमें यहाँ तक नौबत आई कि–महावीर देवके अवर्णवाद भी बोलने लग गया । उसको यह भी समझाया गया था कि–“तू जो उत्सूत्र भाषण करके अनुकंपाका निषेध करता है, वह बिलकुल बे सिर–पैरकी बात है । देखो, उपासकदशांगमें, श्रेणिक राजाने अनुकंपाके कारण अमारी पटह बजवाया, ऐसे लिखा है । रायपसेणीसूत्रमें परदेशी राजाने १२ व्रतका उच्चारण किया, वहाँ परिग्रहपरिमाणका चतुर्थ हिस्सा अनुकम्पा (दानशाला ब-

गैरह) में लगाया। और भी देखोः-उत्तराध्ययनसूत्रमें श्री-नेमनाथ विवाहके निमित्त जब आए हैं, तब वहाँ पर वाडेमें भरे हुए पशुओंको अनुकंपासे छुडवाये हैं। तथा ठाणांगसूत्रमें दस प्रकारके दान प्ररूपण किये हैं उनमें अनुकंपादान भी आ जाता है।"

इत्यादि बहुत २ पाठ दिखा करके समझाया, परन्तु उसने अपने अभिनिवेशको बिलकुल त्याग ही नहीं किया। ठीक ही बात है कि जीवोंकी गति कर्मोंके अधीन है। और जैसी गति होती है वैसीही मति भी होती है। तदनुसार भिखुनजीकी मति भी, उसकी गतिका परिचय कराने लगी। बस, परमात्माके शासनमें अनेकों निह्नव हुए, उन्होंमें इसका भी एक नम्बर बढ गया। परन्तु इसमें एक विशेषता थी कि और सब निह्नवतो मूलपरंपरासे निकले, परन्तु यह तो निह्नवोंमेंसे निह्नव हुआ। अस्तु!

यह पहिलेही दिखला दिया है कि-भिखुनजीने मूल तो दोही रकमोंका फेरफार किया। दया और दान। परन्तु उन दोनों रकमोंके फेरफार करनेमें, उसको अनेकों मन्तव्य शास्त्र विरुद्ध प्रकाशित करने पडे। यहाँपर संक्षेपमें, उसके प्रकाशित मन्तव्य दिखलाये जाते हैं।

दयाके विषयमें.

१ भूखे-प्यासेको जिमाने, कबूतर वगैरह जीवोंको दाने डालने तथा पानीकी पीयाऊ (पो) लगाने एवं दान-शाला करवानेमें एकान्त पाप होता है

२ बिल्ली, मूसे [ऊंदर] को पकडती हो, और अगर उसको छुडाया जाय, तो भोगान्तराय लगे । इसी तरह और भी कोई हिंसक जीव, कीसी दुर्बल जीवको मारता हो और छुडाया जाय, तो भोगान्तराय लगता है, ।

३ असंयति जीवका जीना नहीं चाहना ।

४ मरते हुए जीवको जबरदस्तिसे यानी शरीरके व्यापारसे बचावे तो पाप लगे ।

५ जीवको मारे उसको एक पाप लगे और बचावे उसको अठारह पाप लगें ।

६ साधुको कोइ दुष्ट फांसी दे गया हो, और कोइ दयावंत उस फांसीसे साधुको बचावे, तो उसको एकान्त पाप लगे ।

७ दुःखी जीवको देखकरके विचार करना कि-'अहो ! यह अपने कर्मसे दुःखी हो रहा है। उसके कर्म तूटें तो अच्छा' बस, ऐसी चिंतवना करे, उसका नाम अनुकंपा है । भोजन-वस्त्र वगैरह दे करके उस जीवको सुख उपजाना नहीं चाहिये ।

प्रिय पाठक ! हमारे तेरापंथी भाइओंकी दया के, नहीं नहीं निर्दयताके नमूनें आपने देखलिये । अब उनके दान विषयक कुछ नियम देखिये ।

दानके विषयमें.

१ साधुको छोडकरके किसी (गरीब-रंक-दुर्बल-दुःखी वगैरह) को दान देनेमें एकान्त पाप लगता है ।

२ महावीर भगवंतने असंयती–अव्रतियोंको वरसी दान दिया जिससे उनको बारह वर्ष [फोडा] दुःख पडा ।

३ साधुके सिवाय पुण्यका क्षेत्र कहीं भी नहीं है ।

४ श्रावकको भी दान देनेमें पाप लगता है।

५ श्रावक झहरके कटोरेके समान तथा कुपात्र हैं। इस लिये उनको दान देनेमें तथा धर्मके उपकरणदेनेमें भी धर्म नहीं है।

इनके सिवाय अनेकों मन्तव्य शास्त्रविरुद्ध प्रकाशित किये हैं। पाठकोंने हमारे तेरापंथी भाइयोंकी दयाकी पराकाष्ठा ऊपरसे देखली होगी। क्या उनलोगोंको कोईभी मनुष्य जैन कहनेका दावा कर सकता है? कभी नहीं। परमात्मा महावीर देवने साधुओंको तथा गृहस्थोंको ऐसी निर्दयता रखना फरमायाही नहीं। परन्तु ठीक है, जो लोग संस्कृत-व्याकरणादिको तो पढते नहीं, और टब्बाटब्बीसे अपना कार्य निकालना चाहते हैं, वे ऐसे २ झूठे अर्थ करके सत्यमार्गसे परिभ्रष्ट हो जायँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या? याद रखना चाहिये कि—सिवाय व्याकरणादि पढनेके सूत्रोंके वास्तविक अर्थ नहीं प्राप्त हो सकते। और जो लोग नहीं पढे हुवे होते हैं, उनको जैसा भूत लगाया जाय, वैसा लग सकता है। जैसे 'घी खिचडी' का दृष्टान्त।

घी खिचडीका दृष्टान्त.

"एक विद्यानुरागी राजा न्यायपूर्वक राज्य करता था, और उसके पास एक विद्वान् पुरोहित भी रहता था। अतएव उसकी प्रशंसा देश-विदेशमें हुआ करती थी। हजारों विद्वान् उस राजाके पास आकरके, अपनी विद्याका माहात्म्य दिखाकर लाखों रूपये इनाममें ले जाते थे। कालकी विचित्र महिमा है। वह अपना कार्य बराबर बजाया ही करता है। इसी

नियमानुसार अपनी अपनी आयुष्यको पूरा करके राजा तथा पुरोहित दोनों परलोकमें जा बसे । राजाकी गद्दी पर राजपुत्र बैठा और पुरोहितजीका कार्य पुरोहितजीका लडका करने लगा । परन्तु ये दोनों संस्कृत ज्ञानसे बिलकुल वंचित ही थे । एक दिन पुरोहितकी स्त्रीने अपने पतिसे कहाः–' स्वामिनाथ ! राजाके पास अनेकों विद्वान् देश–विदेशसे आते हैं । आपके पिता संस्कृतके परमज्ञाता थे, जिससे समस्त विद्वान् प्रसन्न होकर जाते थे । आपने मोज–शौकमें विद्यारत्न प्राप्त किया नहीं । लेकिन अब आपका अपमान न हो, इस लिये आपको थोडी बहुत संस्कृत विद्या प्राप्त करलेनी चाहिये । धूर्तराट् पुरोहित बोलाः–' मुझे सब प्रकारकी विद्याएं कपट देवके प्रसादसे प्रसन्न हैं । व्याकरणको तो व्याधिकरण समझता हूं । तथा न्यायको नाई (हजाम) समझता हूँ । तू जराभी फिक्र मत कर ।' ऐसा कह करके राजाके पास चला गया ।

राजाके पास अपनी बडाईका व्यूगल बजाता हुआ कहने लगाः–'महाराज ! आजकल सच्ची विद्या लोगोंमें रही नहीं । सब लोग पांच २ दस २ श्लोक कंठस्थ करके यहाँ आते हैं, और आपको प्रसन्न करके पुष्कल द्रव्य ले जाते हैं । आपके पास अब जो पंडित आवे, उसकी परीक्षा करनी चाहिये । लीजिये, मैं यह श्लोक देता हूँ । इसका अर्थ, जो पंडित आवे, उससे पूछिये, । ऐसा कह करके पुरोहितजीने ' शान्ताकारं पद्मनिलयम् ' ऐसे पदवाला एक श्लोक दिया । इसका अर्थ भी उसने राजाको समझा दिया । उसने कहा, ' इसका अर्थ है ' घी खिचडी ' । जो पंडित ऐसा अर्थ न करे उसको मूर्ख समझना ' ।

राजाने, उस श्लोकको और उसके अर्थको अपने हृदयमें स्थापन कर लिया। राजाके पास काशी-कांची-नदीया-शान्तिपुर-भट्टपल्ली-मिथिला-काश्मीर तथा गुजरातसे निरन्तर पंडित आने लगे। और अपनी २ विद्वत्ता राजाको दिखाने लगे। जो पंडित राजसभामें आया, उसके सामने वही 'शान्ताकारं पद्मनिलयं' वाला श्लोक धर दिया। इस श्लोकका अर्थ सब पंडित अपनी २ बुद्ध्यनुसार करने लगे। परन्तु मनमाना अर्थ नहीं करनेसे राजा प्रसन्न नहीं होता था। बिचारे पंडित लोग खंडान्वय-दंडान्वयसे अर्थ करने लगे, तथा प्रकृति-प्रत्यय वगैरह सब पृथक् पृथक् दिखा करके अपना पांडित्य दिखाने लगे, परन्तु राजाकी प्रसन्नता न होनेके कारण वे विना दक्षिणाके ही अपना २ मार्ग लेने लगे। ऐसे सैंकडों पंडित आए, परन्तु राजा सबका अपमानही करता रहा। राजा उस धूर्तपुरोहितके ऊपर अधिकाधिक प्रसन्न होने लगा, और उसकी जो बारह हजारकी आमदनी थी, वह बढाकर चौवीस हजारकी कर दी। राजाके मनमें यह विश्वास हो गया कि-सारे देशमें यदि कोई पंडित है तो पुरोहितही है।

एक दिन एक ब्राह्मणका लडका पुरोहितकी स्त्रीकी सेवा करने लगा। उसने एक दिन बात बनाकर कहाः-एक 'श्लोक ऐसा है कि जिसका अर्थ अपने राजा और आपके पति ये दोनोंही जानते हैं। तीसरा कोई जानताही नहीं है। क्या आप उस श्लोकका अर्थ नहीं जानते हैं'। स्त्रीने यह बात मनमें धारण करली। रात्रीको जब पुरोहितजी आए, तब झटसे स्त्रीने पूछाः-' राजा जो श्लोक सब पंडितोंको पूछता है उसका अर्थ क्या है?' पुरोहितने कहाः-' तू समझती नहीं

है । 'षड्कर्णो भिद्यते मंत्रः, इस नियमानुसार यह बात तीसरेको नहीं कही जा सकती ।'

स्त्रीने बराबर हठ पकडी, और कहाः-'मुझको अगर अर्थ नहीं कहेंगे, तो मैं समजूंगी कि-आपका मेरे पर विश्वास नहीं है । और प्रेमभी नहीं है ।'

स्त्रीके आगे भट्टजीका जोर कहाँ तक चल सकता था ? स्त्रीके आग्रहसे पुरोहितजी कहने लगेः-'देख, मैं अर्थ तुझे कहता हूं, परन्तु किसीसे कहना नहीं । मुझको उस श्लोकका अर्थ नहीं आता है, परन्तु मैंने राजाको बहकानेके लिये 'घी खिचडी' ऐसा अर्थ कह रक्खा है । क्योंकि-वैसा अर्थ कोई पंडित करे नहीं, और राजाकी प्रसन्नता होवे नहीं । बस, इसीसे अपना कामभी जमा रहे ।'

प्रातःकाल होते ही वह लडका आया और स्त्रीके सामने पूर्वोक्त बात छेडी । लडकेने कहाः-'आप सब बातोंमें प्रवीण हैं, परन्तु आश्चर्य है कि उस श्लोकका अर्थ आपकोभी नहीं आता ।' स्त्रीने झटसे कह दियाः-'यह क्या बोलता है, मुझे अर्थ आता है ।' लडकेने कहाः-'मैं नहीं मान सकता तिसपरभी अगर आता होवे तो कह दीजिये ।'

स्त्रीकी जाति कहाँ तक अपने हृदयमें गुप्त बात रख सकती है ? स्त्रीने कहाः-'देख ! किसीसे कहना नहीं । उसका अर्थ तो, जो पंडित लोग करते हैं, वही है, परन्तु राजाको बहकानेके लिये 'घी खिचडी' ऐसा अर्थ ठसा दिया है ।'

लडकेको उस श्लोकका तात्पर्य जब ठीक २ मिल गया । तब हमेशा समस्त पंडितोंका अपमान देख करके लडकेके मनमें बहुतही ग्लानी उत्पन्न होती थी ।

एक दिन बडा भारी पंडित राजाके पास आया, उसकी भी वही दशा होगी, ऐसा जान करके वह लडका उस पंडितके पास गया। और कहने लगाः-'पंडितजी महाराज! राजा महामूर्ख है, आपके सामने एक श्लोक रक्खेगा। उसका अर्थ राजाने जो सोच रक्खा है, अगर वह आप नहीं करेंगे, तो आपका अपमान करके निकाल देगा। राजा उस श्लोकका जो अर्थ समझ बैठा है, वह अर्थ मैं जानता हूँ। यदि आप यह स्वीकार करें कि-राजा आपको जो दे, उसमेंसे आधा मुझको देवें, तो मैं उसका अर्थ आपको कह दूँ।' पंडितजीने इस बातका स्वीकार किया, तब लडकेने कहा कि-'राजाको कह देना कि इसका अर्थ 'घी खिचडी' होता है।'

पंडितजी विचार करने लगे कि-बडा भारी अनर्थ किया है। अस्तु! पंडितजी अपने सब छात्रों (विद्यार्थियों) के साथ राजसभामें गये। राजाने शीघ्रही उस श्लोकको पंडितजीके सामने धर दिया। उसको देख करके पंडितजी कुछ हसे, और कहने लगेः-'महाराजाधिराज! ऐसी क्या बात आपने निकाली। कुछ तत्त्वकी बात तो निकालिये। ऐसे श्लोकके अर्थ तो हमारे विद्यार्थी लोग भी कर देंगे।' ऐसा कह करके एक विद्यार्थीको खडाकर दिया। और कहाः-'जा इस श्लोकका अर्थ राजाजीके कानमें जा करके कह दे।' विद्यार्थीने धीरेसे कानमें कहाः-भो राजन्! 'घी खिचडी'। 'घी खिचडी' इन चार अक्षरोंको सुनतेही राजा चौंक उठा। इतनाही नहीं, सिंहासनसे उतर करके पंडितजीको साष्टांग नमस्कार भी किया। और लाखों रुपये इनाममें दिये। पंडितजीका जयजयकार हुआ। पंडितजीने धीरेसे कहाः-''हे राजन्! यह इनाम वगैरह तो ठीक है, परन्तु

मैं आपसे एक और बातकी याचना करता हूँ । वह यह है कि-आप मेरे पास एक वर्ष पर्यन्त संस्कृतका अभ्यास करिये । मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगा । सिर्फ घंटे डेढ घंटेमें मूल २ बातको समझावूँगा । "

राजाने इस बातको स्वीकार किया । और हमेशा थोडी थोडी संस्कृत पढने लगा । राजे महाराजाओंकी बुद्धि स्वाभाविक सुंदर तो होती ही है । बस, थोडे ही दिनोंमें गद्य-पद्यका अर्थ राजा स्वयं करने लगा एक दिन पंडितजी परीक्षा लेने लगे । उस समय पंडितजीने वही 'शान्ताकारं पद्मनिलयं' पदवाला श्लोक राजाके सामने रक्खा और कहाः-'राजन् ! अब इसका अर्थ करिये.'

राजा 'शान्त आकृतिवाले, पद्म है स्थान जिसको इस प्रकार जैसा चाहिये, वैसा अर्थ करने लगा । तब पंडितजीने कहाः-'नहीं महाराज, इसका सच्चा अर्थ करिये ।' राजाने कहाः-'पंडितजी महाराज, इसका दूसरा अर्थ होताही नहीं है ।' पंडितजी बोलेः-'महाराजाधिराज, इसका 'घी खिचडी' तो अर्थ नहीं होता है ?' राजाने कहाः-'वाह ! पंडितजी महाराज ! ऐसा अर्थ कभी हो सकता है ?।

पंडितजीने कहाः-'बस, महाराज! ख्याल करिये कि आपने कितने पंडितोंका अपमान किया ? । और कैसा अनर्थ किया ? ।

ऐसे बचन सुनते ही राजाने, उस झूठे अर्थ दिखलाने वाले पुरोहितको कैद करनेको आज्ञा फरमाई। उसकी सारी मिलकत तथा आमदनी वगैरह छीन ली। और सत्य अर्थके प्रकाश होनेसे अपनी अज्ञानताको धिक्कार देने लगा । "

'घी खिचडी' के दृष्टान्तसे आप लोग समझ गये होंगे कि-संस्कृत व्याकरणादि नहीं पढनेसे कैसी कैसी अवस्था होती है ? और व्याकरण दिके पढनेके अनन्तर कैसी पोल निकल जाती है ?। इस लिये जहाँ तक हमारे तेरापंथीभाई व्याकरणादि नहीं पढेंगे, वहाँ तक परमात्माके सच्चे मार्गसे विमुखही रहेंगे।

महानुभाव तेरापंथी भाइयो ! अब भी कुछ समझजाओ और विद्याध्ययन करके स्वयं ज्ञान प्राप्त करो। लकीरके फकीर मत बनो। अगर पशुओंकी अपेक्षा आप अपनेमें कुछ भी अच्छी बुद्धि समझते हो तो उस बुद्धिका उपयोग, तत्त्वके विचार करनेमें करो। गदहेका पूंछ पकडा सो पकडा, ऐसा मत करो। स्वयं अपनी बुद्धिसे सार असारका, तत्त्व-अतत्त्वका, अच्छे-बुरेका विचार करो। जो बात अच्छी लगे, उसको ग्रहण करो। शास्त्रविरुद्ध कल्पनाओंके द्वारा अनन्त संसारी मत बनो। जी तो चाहता है कि-तुम्हारी सभी शास्त्रविरुद्ध कल्पनाओंका खण्डन किया जाय। परन्तु जो खण्डित है, उसका खण्डन क्या करना ?। तुम्हारे मन्तव्योंमें प्रत्यक्ष निर्दयता दिखाई दे रही है-प्रत्यक्ष अधर्म प्रतिभासित होता है, तो फिर उसके खण्डनके लिये अधिक कोशिश करनेकी आवश्यकता ही क्या है ?। और बहुतसी तुम्हारी अज्ञानता, तुम्हारे तेईस प्रश्नोंके उत्तरमें दिखलाई ही गई है, इस लिये अधिक न लिख करके यही लिखना काफी समझते हैं कि-कुछ पढो और ज्ञान प्राप्त करो, जिससे तुम्हें स्वयं मालूम हो जायगा कि-तुम्हारे भीखुनजीने तथा और साधुओंने जो २ परूपणाएं की हैं, वे सब शास्त्रविरुद्ध हैं। उन लोगोंने तुमको अपनी जालमें फँसा करके दुर्गतिमें लेजानेकी कोशिशकी है।

इस लिये सतझना हो तो समझ लो, उस दुर्गतिदायक ढाँचेको छोडदो, बस इतनाही लिख करके अब पालीके तेरापंथियोंने हमारें पूज्यपाद आचार्यजी महाराज तथा उपाध्यायजी महाराजके साथ गत वैशाख शुक्लमें, जो चर्चाकी थी, उसका सारा वृत्तान्त यहां लिख देना उचित समझता हूं।

'पाली (मारवाड) में तेरापंथियोंके साथ चर्चा।'

एक दिन घाणेरावाले गणेशमलजी तथा हीराचंदजी तातेडको आपसमें जिनप्रतिमा तथा मंदिरके विषयमें वातचीत हुई, उसमें गणेशमलजीने कहा:-"प्रतिमा पूजनेमें धर्म है। कई श्रावकोंने प्रतिमा पूजी है।" इत्यादि बातें होती थीं, इतनेमें शिरेमलजी नामक तेरापंथी श्रावकने, जो वहां उपस्थित था, गणेशमलजीसे कहा:-"क्या आप यह बात लिखकरके दे सकते हैं?" गणेशमलजीने कहा:-'मैं खुशीसे लिख सकता हूं।' पश्चात् हीराचन्दजी तातेड तथा गणेशमलजी इन दोनोंने हस्ताक्षर करके लिख दिया। इसके वाद इस वातका निर्णय-चर्चा करनेके लिये दस वीस आदमी मिलकर हमारे गुरुवर्य शास्त्रविशारद-जैनाचार्य श्रीमान् विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजके पास उपाश्रयमें आए। आते ही यह प्रश्न किया कि:-'महाराज! प्रतिमा पूजनेमें धर्म है?' आचार्य महाराजने कहा-'हां'। फिर पूछा 'कौनसे सूत्रमें?' आचार्य महाराजने कहा:-'रायपसेणीसूत्रमें'। किस तरह? देखो:-

"सूर्याभदेवने उत्पन्न होनेके बाद अपने मनमें विचार किया कि-मुझको पूर्व-पश्चात्-हितकर-सुखकर-मुक्त्यर्थ-आ-

गामी भवमें सुखकारी क्या होगा ? इत्यादि विचार करके प्रभुपूजा की, जहाँ नमुत्थुणं वगैरह करके ' धुवं दाउं जिणवराणं ' इत्यादि पाठमें साक्षात् जिनवर, ऐसा विशेषण देनेसे जिनप्रतिमा जिनतुल्य मानी हुई है।"

इत्यादि बातें सूरिजी फरमातेथे, इतनेमें युगराजनामक तेरापंथी बोल उठाकी " सूर्याभदेवने नाटक किया, उस समय भगवानने न तो आदर किया है और न आज्ञा दी है। यदि धर्म होता तो भगवान् क्यों आज्ञा न देते ?"

उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजने कहाः-"महानुभाव ! भगवान् मौन रहे, वैसे तीसरा पदभी तो है:-'तुसणीए संचिट्ठति'। यदि पापका कारण होता तो भगवान् अवश्य निषेध करते। कई जगहोंपर भगवान्ने पापके कारणोंमें निषेध किया है। परन्तु ऐसा कहीं भी आप दिखा सकते हैं कि पापके कारणोमें भगवान् मौन रहे हों ?।"

इस चर्चामें विद्वद्रत्न पं० परमानन्दजी मध्यस्थ थे। पंडितजीने कहाः-' अनिषिद्धं स्वीकृतम् ' इस न्यायसे सूर्याभदेवका नाटक प्रभुकी आज्ञा बाह्य नहीं है। तदन्तर सूरीश्वरजीने, सभाके समक्ष भगवान् मौन क्यों रहे ? इसका रहस्य इस तरह समजायाः-

" भगवान् यदि सूर्याभदेवको नाटक करनेकी आज्ञा दें तौ चौदहहजार साधुओं तथा साध्वियोंके स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होता है। यदि निषेध करें, तो भक्तिभरानिर्भर मनवाले देवोंकी भक्तिका भंग होता है। अत एव प्रभु मौन रहे। इससे सूर्याभदेवने नाटक किया, वह प्रमाण है। अप्रमाण नहीं। प्रभु

इसमें सम्मत न होते तो दुसरीवार, सूर्याभदेवने जब आज्ञा मांगी, उस समय प्रभु साफ 'ना' कह देते। अथवा दृष्टि फिराकर बैठ जाते। उनमेंसे कुछ भी नहीं किया तथा सूर्याभदेवने जो २ नाटक किये उसकी चर्चा जब गौतमस्वामीने भगवान्से पूछी, तब जो बातथी सो भगवान्ने कह दी। अगर भगवान्की निषेध बुद्धि होती तो भगवान् साथ २ यह भी कह देते कि-उसमें मेरी आज्ञा नहीं थी अथवा योंही कह देते कि-सूर्याभदेवने नाटक करके पाप कर्म बांधा है। इनमेंसे कुछ भी नहीं करनेसे नाटक तथा पूजा दोनों सूर्याभदेवको लाभदायक हैं, इसमें जरा भी शक नहीं है।"

तेरापंथी श्रावक युगराज बोला कि-" भगवतीसूत्रमें जलते हुए घरसे धन निकाल लेने, तथा वल्मीक (राफडे) के शिखर तोडनेसे धन निकालनेके समय 'हियाए सुहाए' इत्यादि पाठ कहा है। तो क्या धन निकालनेमें भी मोक्ष धर्म था?"

उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजीने पूछाः-" आपने भगवतीसूत्रके जो दो पाठ हैं, उनको देखे हैं? अगर देखे हों तो कहिये वे कौनसे शतकमें हैं?"

तब वे बोलेः-" इस समय हमें याद नहीं हैं।" ऐसा कह करके सब चले गये। दूसरे दिन दो बजेका समय निश्चय किया गया।

निश्चय करनेके मुताबिक दो बजेके समय कोईभी न आया, बल्कि चार बजे तक कोई नहीं आया। चार बजनेके बाद तेरापंथीकी तरफसे एक आदमी आ करके कह गया कि-"आज सूत्र नहीं मिला। कल आपका लेक्चर होनेसे परसों एकमके दिन दुपहरको आवेंगे।"

एकएकके दिन दुपहरको सब लोग उपाश्रयमें आए। आदमियोंकी भीड बहुत हो गई थी, परन्तु सब लोग शान्तचित्तसे श्रवण करतें थे। जिनपूजाके विषयमें बहुत चर्चा हुई। तेरापंथी तथा ढूंढियोंकी तरफसे यह प्रश्न उठा कि-'प्रश्नव्याकरणमें देवमंदिर तथा प्रतिमा करानेवाला मंदमति है, ऐसा कहा है, इसका क्या कारण?।'

इसके उत्तरमें यह कहा गया कि-"साधु चैत्यकी वैयावच्च करे, ऐसे पाठोंके साथ, उपर्युक्त पाठका विरोध आता है। इस लिये पूर्व जो आश्रवद्वार है, उसके अधिकारि अनार्य लोग दिखलाये हैं। अत एव जहां देवमंदिर-प्रतिमा वगैरह जो २ बातें हैं, वे अनार्यके लिये समजना। देवमंदिर कहनेसे जिनमंदिर नहीं घट सकता। जिनमंदिर वैसा पाठ वहां नहीं हैं।

ऐसा कहनेसे सब लोग चुप हो गये। पुनः सूर्याभदेवकी पूजा संबंधी प्रश्न उन लोगोंने उठाया। और कहाः-"सूर्याभदेवने जैसे पूजाकी, वैसे मिथ्यात्वी देव तथा अभव्य भी पूजा करते हैं।"

श्रीमान् पं० परमानन्दजीने कहाः-"पूजा हुई, यह आप स्वीकार करते हैं, सूर्याभदेव समकिति है, यह भी आप स्वीकार करते हैं, तो फिर पूजा समकिती जीवोंकी करणी सिद्ध हुई।"

इतनेमें एकने कहाः-"मिथ्यात्वी देव पूजा करते हैं, अभव्य भी करते हैं। अत एव वह तो देवोंका आचार है।"

आचार्य महाराजने कहाः-"महानुभावो! अभव्य-मिथ्यादृष्टि जिनप्रतिमाकी पूजा करते हैं, ऐसा कोई पाठ तुम्हारी

दृष्टिमें है? यदि हो तो दिखा दीजिये, जिससे खुलासा हो जाय।"

एक बूढा आदमी बीचमें बोल उठाः—"क्या सर्व इन्द्र समकित दृष्टि हैं?" आचार्य महाराजने कहा 'हां'। तब वह कहने लगाः—'नहीं, समकित दृष्टि नहीं हैं'। तब लालचन्दजी तथा शिरेमलजीने उसको रोका और कहाः—"इन्द्र समकिति हैं।" जब उसके पक्षवालोंने कहा, तब वह चुप हुआ। बीच बीचमें दोनों पक्षके श्रावकोंमें ऐसी गडबड मचजाती थी कि—कोई क्या कह रहा है, यह भी नहीं सुनाजाता था। परन्तु पंडित प्रवर परमानन्दजी बीच बीचमें, उन लोगोंके व्यर्थ कोलाहलको, शान्त कराते थे।

वकील शिरेमलजी, लालचन्दजी तथा युगराजजीने कहाः—"सूर्याभदेवने बत्तीस वस्तुकी पूजाकी है। उसी तरह जिनप्रतिमाकी भी पूजा की है।"

पंडितजीने कहाः—"महाराजजी! इसका उत्तर क्या है?। क्योंकि ये लोग जिनप्रतिमाकी पूजाको, और पूजाओंके समान मानते हैं। यदि ऐसा ही हो तो विशेष बात ठहरेगी नहीं।"

आचार्य महाराजने कहाः—"जिनप्रतिमाकी पूजाके समय हितकारी—कल्याणकारी—सुखकारी आगे मुझे होगी ऐसा कहा है तथा नमुत्थुणं कहा है, वैसे शब्द यदि ३१ वस्तुओंके आगे कहे हों, तो दिखलाओ। अगर वैसा नहीं है, तो कदाग्रह ग्रहसे मुक्त हो जाओ।" तेरापंथीके श्रावकोंने कहाः—"हियाए सुयाए" इत्यादि पाठ भगवती सूत्रमें है। वहाँ

धन निकालनेके लिये कहा हैं। धनमें कुछ धर्म नहीं है, तथापि कहा है, इसका क्या कारण ?"

आचार्य महाराजने कहाः–"उस पाठका मतलब आपको याद है ?" उन्होंने कहाः–हां याद है। भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके प्रथम उद्देशेमें तथा पन्द्रहवें शतकके प्रथम उद्देशेमें यह अधिकार हैं।

आचार्य महाराजने कहाः–"वहाँ पर कैसे अधिकार चले हैं ? उनका मतलब क्या हैं ?"

इसके उत्तरमें शिरेमलजी कहने लगे, तब उसके पक्षका दूसरा आदमी निषेध करने लगा। दोनोंको आपसमें 'हा' 'ना' की लडाई हुई, और योंही दस मिनिट चली गई। इसके बाद पंडितजीने कहा किः–महाराजजी आपही फरमाईये। आचार्य महाराजने उस पाठको निकाल करके पंडितजीके सामने रख दिया। "गोशालेने, आनंदसाधुके पास कही हुई, चार वणिक्की कथा कही। वल्मीक (राफडे) के तीन शिखर तोडे, जिसमेंसे जल–सुवर्ण वगैरह माल निकला। चौथे शिखरके तोडनेके लिये जब खडा हुआ, तब वृद्ध वणिक् शिक्षा देता है। वे सब वणिक्के विशेषण हैं, धनके विशेषण नहीं हैं।"

इस बातको सुनकरके तथा पाठको देख करके पंडितजी आश्चर्यमग्न हो गये और उन लोगोंकी अज्ञानता पर तिरस्कार जाहिर करने लगे।

जब ढूंढक तथा तेरापंथी, यह समझ गये कि–'पाठ उलटा है–अपने कहे मुताबिक नहीं है', तब कहने लगे कि–

"हम यहां निःश्रेयस शब्दका अर्थ मुक्ति नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं।" पंडितजीने कहाः-महाराज इसका उत्तर क्या है।'

आचार्य महाराजने फरमायाः–" शिव--कल्याण–निर्वाण तथा कैवल्य वगैरह मुक्तिके ही पर्याय हैं।" पंडितजीने कहाः-' बराबर है। निःश्रेयस शब्द दूसरे शतकके प्रथम उद्देशेमें है। वहाँ मुक्ति अर्थ किया है।'

इत्यादि बातोंसे जब स्पष्ट मूर्ति पूजा सिद्ध होने लगी। तब श्रावक लोगोंने आपसमें गडबड मचा दी। इसके बाद वे लोग इस बात पर आये कि—प्रश्न लिख करके महाराजको दिये जाँय। दवातकलम–और कागज मंगवाया गया। इतनेमें तेरापंथीका एक आदमी आया। उसने उन लोगोंसे कहाः–'चलिये आपको बुलाते हैं।' यह भी एक तरहकी चालबाजी ही थी। अस्तु, अतएव सब लोग चले गये।

एक बात और कहनेकी रह गई। जिस समय 'महानिशीथ प्रमाण है कि–अप्रमाण!' इस प्रकारकी बात चली थी, उस समय केसरीमलजीने यह कहा था कि–" मूर्ति पूजाकी प्ररूपणा करे, वह साधु नरकगामी है, वैसे उसमे लिखा है"। परन्तु उस पाठमें 'प्ररूपक' शब्द नहीं है, यह बात, उपाध्यायजी श्रीइन्द्रविजयजी महाराजने, पंडितजीके समक्ष केशरीमलजीको समझाई। केसरीमलजीने अपनी भूल स्वीकार की। इतना ही नहीं, परन्तु पंडितजीके कहनेके मुताबिक सभाके बीचमें जोर शोरसे अपनी भूल स्वीकार की।

आचार्य महाराजश्रीने मूर्तिपूजाके विषयमें बहुत समझाया तब उसने कहा कि–मैं दर्शन हमेशा करता हूँ। पूजाके विषयमें कहा तब वे कहने लगेः–" मैं लकीरका फकीर हूँ।"

एक और भी बात है । अनुकम्पाके विषयमें तेरापंथी कहते हैं कि-'महावीर स्वामी चूक गये । ' ऐसा आचार्य महाराजने कहा तब पंडितजीने तेरापंथी श्रावकोंसें पूछाः-'क्या यह बात सत्य है ? ' । तब ये लोग उडानेकी चालाकी करने लगे, तब पंडितजीने फिर कहा:-'जो बात हो, सो बराबर कहिये । ' इतने में बाईस टोलेवाले बोल उठे कि-हम उस बातको नहीं मानते हैं ।

वे लोग यह कह करके उठ गये थे कि 'आधे घंटेमें प्रश्न भेजेंगे' । परन्तु दूसरे दिनके बारह बजे तक कोई न आया । एक बजे २३ प्रश्नोंका एक लंबा चौडा चिट्ठा ले करके सब लोग आए। पंडितजीको बुलाकरके उन लोगोंने कहा किः-'पंडितजी, इसको पढिए ' । पंडितजी पढने लगे । पंडितजीको भी उस चिट्ठेको पढते २ ऐसे २ शब्दोंका ज्ञान और अनुभव होने लगा जो कभी न पढेथे, और न सुने थे । पंडितजी वारंवार यह कहते जाते थे कि-'यह प्रश्न ठीक नहीं है, ' ' यहाँ पर यह शब्द न चाहिये, 'ये शब्द बिलकुल अशुद्ध हैं,' तब तेरापंथी श्रावक कहने लगेः-' लिखने वालेका यह दोष है । ' ठीक ये भी जीवरामभट्टके सच्चे नातेदार ही निकले ।

प्रियपाठक ! तेरापंथीके २३ प्रश्न, ज्योंके त्यों, उनके उत्तरोंके साथ दिये जायेंगे, जिससे विदित हो जायगा कि जिनको भाषाकी भी शुद्धाशुद्धिका ख्याल नहीं है, वे सूत्रोंके पाठोंको क्या समझ सकते हैं । खैर, अभी उनके २३ प्रश्नोंमेंसे कुछ शब्द, नमूनेकी तौर पर यहाँ उद्धृत करना समुचित समझता हूँ । देखिये, 'प्रथमकवले मक्षिकापातः' इस नियमको चरि-

तार्थ करता हुआ 'श्री जिनायै नमो:', और 'भ्रन्य पूजा,' 'आग्या,' 'पुरुपते,' 'अग्या,' आदिके बदले 'आददे,' 'पाश्यांग,' पर्यायके बदले 'भज्याये,' त्रसके बदले 'तस्य' 'उप्पीयोग' छद्मस्थके बदले 'छंदमसत,' अध्ययनके बदले 'अध्ये,' दर्शन चारित्रके बदले 'दर्शचात्र, शत्रुंजयके बदले 'श्रेतुर्जा,' 'न्याकर्ण,' हिंसाके बदले 'हंस्या' कहाँ तक लिखें ? उनके २३ प्रश्नोंमें अशुद्धरूपी कीडे इतने बिलबिलाते हैं, कि जिनका कुछ ठिकाना ही नहीं ।

अब इस वृत्तान्तको यहाँ ही समाप्त करता हूँ, और आगे उन लोगोंके पूछे हुए तेईस प्रश्न तथा उनके उत्तर प्रकाशित करता हूँ ।

तेरापंथियोंके तेईस प्रश्नोंके उत्तर.

परम पूज्य, प्रातःस्मरणीय, गुरु महाराज शास्त्रविशारद–जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज तथा उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजीके साथ, पाली–मारवाडमें तेरापंथी श्रावकोंकी मूर्तिपूजा वगैरह विषयोंमें, चार दिन तक जो चर्चा हुई उसका वृत्तान्त पाठक ऊपर पढ चुके हैं । अब उनके, उन तेईस प्रश्नोंके उत्तर प्रकाशित किये जाते हैं, जिन प्रश्नोंका एक लंबा चिट्ठा उन लोगोंने ता. २८–४–१४ वैशाख शुदि ३ के दिन, आचार्य महाराजको दिया था । जिस समय ये प्रश्न दिये थे, उसी समय सबके समक्ष यह बात निश्चय हुई थी कि–आचार्य महाराजकी तरफसे इन प्रश्नोंके उत्तर अखबारके द्वारा मिलेंगे । बस, निश्चय होनेके मुताबिक, आचार्य महाराजकी तरफसे, उन प्रश्नोंके उत्तर भावनगरके 'जैनशासन' नामक पत्रमें दिये गये थे । और अब इस पुस्तकमें शामिल किये जाते हैं ।

तेरापंथी श्रावकोंने तेईस प्रश्नोंके उत्तर उनके माने हुए बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठसे मांगे हैं। परन्तु बत्तीस ही मानने पेंतालीस और निर्युक्ति–टीका इत्यादि न मानने, इसका क्या कारण है? इस विषय पर, यहाँ कुछ परामर्श करना समुचित समझते हैं।

बत्तीस सूत्र मानने वाले महानुभाव यदि यह कहें कि–हम इस लिये बत्तीस ही सूत्र मानते हैं कि–वे गणधर देवके बनाए हुए हैं। परन्तु यह उन लोगोंकी भूल है। गणधरोंने तो द्वादशांगीकी ही रचना की है। उसमें भी दृष्टिवाद तो विच्छेद होगया है। अब रहे ग्यारह अंग। उन ग्यारह अंगोको ही मानने चाहियें। किस आधारसे उपांगादि सूत्रोंको मानते हैं? यह दिखलाना चाहिये। यदि यह कहा जाय कि–नंदीसूत्रके आधारसे मानते हैं, तब तो फिर नंदीसूत्रमें कहे हुए सभी सूत्रों और निर्युक्ति वगैरहको मानने चाहियें। नंदीसूत्र देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणका बनाया हुआ है, उस नंदीसूत्रको जब मानते हैं, तब देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणके उद्धृत किये हुए सभी सूत्रोंको क्यों न मानने चाहिये?।

अच्छा! अब जो बत्तीस सूत्र, माननेका दावा करते हैं, उनको भी पूरी चालसे नहीं मानते हैं, अतएव इसके कुछ नमूने दिखला देने चाहियें।

नंदीसूत्र जो बत्तीस सूत्रोंमेंसे एक है, उसमें साफ २ लिखा है कि–'टीका, निर्युक्ति तथा और प्रकरणादिको मानना चाहिये, परन्तु मानते नहीं हैं। इसके सिवाय देखिये भगवती सूत्रके २५ वे शतकके तीसरे उद्देशेमें पृष्ठ १६८२ में कहा है कि–

"सुतत्थे खलु पढमो बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुओगे ॥१॥"

अर्थात्—प्रथम सूत्रार्थ ही देना, दूसरे निर्युक्ति सहित देना, और तीसरे निरवशेष (संपूर्ण) देना। यह विधि अनुयोग अर्थात् अर्थ कथनकी है।

इस पाठसे सिद्ध होता है कि—निर्युक्ति को मानना, तिसपर भी क्यों नहीं मानते ?। तीसरे प्रकारकी व्याख्यामें भाष्य-चूर्णि और टीकाका भी समावेश होता है। परन्तु मानते नहीं है।

अनुयोग द्वार सूत्रमें दो प्रकारका अनुगम कहा है:—

"सुत्ताणुगमे निज्जुत्तिअणुगमे य। तथा—निज्जुत्ति-अणुगमे तिविहे पण्णत्ते उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे इत्यादि। तथा उद्देसे निद्देसे निगमे खित्त काल पूरिसे य"

इत्यादि दो गाथाएं हैं॥

अब हम पुछते हैं कि यदि पंचांगीको नहीं मानोगे तो उक्त पाठका अर्थ क्या करोगे ?।

अच्छा इसके सिवाय और देखियेः—

उतराध्ययन सूत्रके २८ वे अध्ययनकी २३ वीं गाथामें कहा है—

सो होई अभिगमरुई सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।
इक्कारस अंगाई पइन्नगं दिट्ठिवाओ य ॥१॥

कहनेका मतलब कि-अभिगमकीरुचि, केवल सूत्रोंसे ही नहीं होती, परन्तु प्रकरणोंसे लेकरके यावत् दृष्टिवाद पर्यन्तके जो सूत्र हैं, उनके पढनेसे होती है।

इससे भी सिद्ध होता है कि सूत्रके सिवाय और भी शास्त्र मानने चाहियें। ऐसे ऐसे पाठ होने पर भी वे लोग उन पाठोंके मुताबिक नहीं चलते हैं। अब कहाँ रहा बत्तीस सूत्रोंको मानना? बत्तीस सूत्रोंके कथनानुसार भी चलते हों तो उन लोगोंको निर्युक्ति वगैरह अवश्य मानने ही चाहिएं।

अच्छा, अब यदि वे, सूत्रों के अर्थ, मूल अक्षरोंसे ही निकालते हों, तो वह उनकी बडी भारी भूल है। सूत्रोंके अर्थ, प्राचीन ऋषि लोगोंकी परंपरासे जो चले आये हैं वैसे, तथा अर्थ करनेकी जो रीति है उसीसे करने चाहिये। यह बात हम ही नहीं कहते हैं, परन्तु खास सूत्रकार फरमाते हैं। देखिये अनुयोग द्वारके ५१८ वे पृष्ठमें लिखा है:—

" आगमे तिविहे पन्नत्ते, सुत्तागमे १, अत्थागमे २, तदुभयागमे ३ "

अर्थात् सूत्रके अक्षर यह सूत्रागम प्रथम भेद हुआ। अर्थ रूप आगम, जिसमें टीका-निर्युक्ति वगैरह है, यह दूसरा भेद हुआ। और तीसरे भेदमें सूत्र तथा अर्थ दोनों आये।

इससे भी सूत्रोंके वास्तविक अर्थ प्राप्त करनेके लिये टिका-निर्युक्ति वगैरहकी सहायता अवश्य लेनी पडेगी।

अब यदि कोई यह घमंड रक्खे की-हम मूल सूत्रके अक्षरोंसे उनके यथार्थ अर्थोंको प्राप्त कर सकते हैं, तो वह

बडी भारी भूल है। कई पाठ ऐसे होते हैं, जिनके अर्थोंके लिये परंपरासे प्राप्त अर्थोंपर अवश्य दृष्टि दौडानी ही पडती है। सूत्रोंके थोडे अक्षरोंमें वहुत अर्थ निकलते हैं। अनुयोग द्वारके १२३ पृष्ठमें 'डोडिणी-गणिया-अमच्चाईणं' ऐसा पाठ है। इन नव अक्षरोंमेंसे, कोई भी पंडित यथार्थ भावार्थ नहीं वतला सकता। डोडिणी कौनथी? गणिका कौनथी? मंत्री कौनथा? क्या उनका संवन्ध था? किस तरह हुआ था?। ये वातें, मूल सूत्रके ९ अक्षरोंसे कभी नहीं निकल सकतीं। ऐसे २ अनेकों पाठ हैं, जिनके अर्थोंके लिये पूर्वाचार्योंकी वनाई हुई टीकाओं और निर्युक्तियों पर ध्यान देना ही पडेगा।

इन वातोंसे सिद्ध होता है कि-जिन्होंने वत्तीस सूत्र (मूल) के ऊपरही अपना आधार रख छोडा है, वे यथार्थमें भूले हुए हैं। यदि वे वत्तीस सूत्रोंके अनुसारभी चलना स्वीकार करते हों तो उनको सूत्रकी आज्ञानुसार, और सूत्र तथा टीका-निर्युक्ति वगैरह अवश्य मानने चाहियें

आश्चर्यकी वात है कि—वत्तीस सूत्र मानने वाले महानुभाव एकही कर्ताके एक वचनको मानते हैं, और दूसरे वचन को उत्थापते हैं। जैसे श्रीभद्रवाहुस्वामिकृत दशाश्रुतस्कंधको मानते हैं, और उन्हीं भद्रवाहुस्वामिकृत दश निर्युक्तियोंको नहीं मानते हैं। कैसा अन्याय?।

अब इस परामर्शको यहाँही समाप्त करके उन महानुभावोंके पूछे हुए तेईस प्रश्नोंके जवाव देना आरंभ करते हैं। उनके प्रश्न जैसेके तैसे यहाँपर उद्धृत किये जायेंगे, जिससे पाठक देख लें कि-जिनको भाषा लिखनेकी भी तमीज नहीं है, जिनको

प्रश्न कैसे पूछे जाते हैं? यहभी मालूम नहीं है और जिनका एक एक शब्द प्रायः भूलसे खाली नहीं है, वे क्या समझ करके मूल सूत्रोंसे प्रश्नके उत्तर मांगते होंगे?।

प्रश्न १—श्री जीनप्रतीमाकी द्रव्य पूजा करनेमे धर्म ओर श्री जिनेस्वरदेवकि-आग्या पुरूपते हैं सो जीनेस्वरदेवने वतीस सात्रांमे कीस जगे अग्या फरमाइ हैं और धर्मका हे।

उत्तर-रायपसेणी सूत्रके पृष्ठ २० में, सूर्याभदेवने, आभियोगिक देवोंको आमलकप्पा नगरीमें, जहाँ वीरप्रभु विचरतेथे, वहां एक योजन जमीन साफ करनेको कहा है। वहां देव, परमात्मा महावीर देवके पास जा करके इस तरह कहते हैं,

"जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुतो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता वंदइ नमंसइ नमंसित्ता एवं वयासी अम्हेणं भंते सूरियाभस्स देवस्स आभियोगिया देवा दिवाणुप्पियं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो समाणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो देवाइं समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वयासी पोराणमेयं देवा! जायमेयं देवा! किच्चमेयं देवा! करणिज्जमेयं देवा! आचिण्णमेयं देवा! अब्भणुण्णायमेयं देवा!।"

अर्थात्-जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आ करके भगवान्को तीन प्रदक्षिणा दे करके ऐसे बोलेः—हे भगवन्!

हम सूर्याभदेवके आभियोगिक (नोकर), आप देवानुप्रियको वंदणा करते हैं। नमस्कार करते हैं। सत्कार करते हैं। सन्मान करते हैं। कल्याण मंगलके निमित्त देव प्रतिमाकी तरह पर्युपासना करते हैं। (देवोंके ऐसे कहनेके बाद) 'हे देवो!' ऐसा आमंत्रण करके श्रमणभगवान् महावीर उन देवोंके प्रति इस तरह बोलेः—'हे देवो! यह प्राचीन है, यह आचार है, यह कृत्य है, यह करणीय है, यह पूर्व देवोंने आचरण किया हुआ है। इस तरह समस्त तीर्थंकरोंने आज्ञा की है, और मेरी भी आज्ञा है।

उपर्युक्त लिखे हुए पाठमें, भगवान्ने, देव प्रतिमाकी तरह पूजा करनेमें 'तुम्हारा कृत्य' 'तुम्हारा आचार' वगैरह कह करके आज्ञा तथा धर्म दिखलाया, तो 'प्रतिमा पूजा' में आज्ञा और धर्म स्वतः सिद्ध हुआ। क्योंकि 'प्रतिमाकी तरह' ऐसा कह करके प्रतिमाका तो खास दृष्टान्त ही दिया है।

इसके सिवाय देखिये। महाकल्पसूत्र, जिसका नाम नंदीसूत्रके ४०९ वे पृष्ठमें "उक्कालिअ अणेगाविहं पन्नत्तं तंजहा-दसवेकालिअं कप्पियाकाप्पियं चुल्लुकप्पसुयं महाकप्पसुयं उववाइयं रायपसेणियं........" इत्यादि पाठमें है, उसमें इस तरहका पाठ है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव तुंगिआए नयरीए बहवे समणोवासगा परिवसंति संखे सयए सिलप्पवाले रिसिदत्ते दमगे पुक्खली निबद्धे सुप्पइट्ठे भाणुदत्ते सोमिले नरवम्मे आणंदे कामदेवाइणो

अज्जे अन्नत्थ गामे परिवसंति अड्डा दित्ता वित्थिण्ण-विपुलवाहणा जाव लद्धट्ठा गहिअट्ठा- चाउद्दसट्ठमु-द्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं पालेमाणा निग्गंथाणं निग्गंथीणं फासुएसणिज्जेणं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेमाणा चेइआलएसु तिसं-झासमए चंदणपुप्फधूववत्थाईहिं अच्चणं कुणमाणा जाव जिणहरे विहरंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! जो जिणपडिमं पूएइ सो नरो सम्मदिट्ठी जाणिअव्वो जो जिणपडिमं न पूएइ सो नरो मिच्छदिट्ठी जाणि-अव्वो मिच्छदिट्ठिस्स नाणं न हवइ चरणं न हवइ मुक्खं न हवइ सम्मदिट्ठिस्स नाणं चरणं मुक्खं च हवइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! सम्मदिट्ठिस्स सड्ढे जिण-पडिमाणं सुगंधपुप्फचंदणविलेवणेहिं पूआ कायव्वा"

अर्थात्-उस कालमें, उस समयमें तुंगिया नगरीमें बहुत श्रमणोपासक-श्रावक रहते थे। शंख, शतक, शिलमवाल, ऋषि-दत्त, दमक, पुष्कली, निविद्ध, सुप्रतिष्ठ, भानुदत्त, सोमिल, नरवर्मा, आनंद, कामदेवादि आर्य, अन्यत्र-दूसरे गाममें रहते हैं। जो आढ्य, दीप्त, विस्तीर्ण, विपुलवाहनवाले (यावत्) लब्धार्थ, गृहीतार्थ, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या तथा पूर्णिमा इन तिथियोंमे प्रतिपूर्ण पौषधको पालते, साधु तथा साध्वि-योंको प्रासुक एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम आहा-रको प्रतिलाभते और चैत्यालयोंमें तीनों संध्याओंमें चंदन-

पुष्प धूप तथा वस्त्रादिसे अर्चन करते (यावत्) जिनमंदिरमें विहरते हैं । हे भगवन् ! वे श्रावक, किस हेतुसे पूजा करते हैं ? । गौतम ! जो जिन प्रतिमाको पूजता है–उस मनुष्यको सम्यग्दृष्टि जानना । और जो मनुष्य जिनप्रतिमाको नहीं पूजता है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना । मिथ्यादृष्टिको ज्ञान–चारित्र–मोक्ष नहीं है । और सम्यग्दृष्टिको ज्ञान–चारित्र–मोक्ष है । अत एव हे गौतम ! सम्यग्दृष्टि सुगंध, पुष्प, चन्दन, और विलेपनसे जिन प्रतिमाकी पूजा करते हैं ।"

इत्यादि पाठोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि–भगवान्ने द्रव्य पूजा करनेमें धर्म कहा है, तथा आज्ञा फरमाई है । तिस परभी आग्रहको न छोडो, तो तुम्हारे भाग्यकी बात है । प्रतिमाकी पूजा करनेवालेको समकितदृष्टि, और अन्यको मिथ्यादृष्टि दिखलाया, तो फिर इससे अधिक क्या चाहिये ? रायपसेणी, जीवाभिगम, ज्ञाता इत्यादिमें प्रत्यक्षपाठ विद्यमान हैं, तिसपरभी धर्म तथा आज्ञाका प्रश्न पूछने वाले–आप लोग अभी कैसे अँधेरेमें फिरते हो, इसका स्वयं विचार करो ।

"प्रश्न–२ श्रीजिनेसर देवने वतीस सात्रमे कीसी जगा जैनमंदीर करानेमे ओर संग कडानेमै अग्या नही फरमाई है न धर्म फरमाय है तो फेर आप ईण दोनां कांमांमे धर्म ओर अग्या कीसी सासत्रके रूसे परूपते हो सो वतीस सात्रोमें इनका अधिकार वतलावै ।"

उत्तर–हम पूछते हैं कि–जिनेश्वरदेवने जिनमंदिर वनवाने और संघ निकालनेकी आज्ञा और धर्म नहीं फरमाये, ऐसा ज्ञान आपको कहांसे हुआ ? । क्या सूत्रोंमें ऐसा निषेध आप

लोगोंने किसी जगह पाया है ? यदि पाया था, तो वह पाठ स्पष्ट लिखना चाहिये था ? । सूत्रोंमें जगह २ मिथ्यात्वके कारण दिखलाए हैं, लेकिन उनमें, जैनमंदिर और संघनिकालनेके नाम नहीं आए हैं। यदि ये, मिथ्यात्वके कारण और जिनाज्ञा बाहर हैं, और ऐसा कोई लेख अगर आप लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ भी था, तो दिखलाना चाहिये था। और यदि नहीं हुआ है तो समझलो कि—जैनमंदिर कराने और संघ निकालनेमें प्रभुकी आज्ञा है। और जहां आज्ञा है, वहां धर्म है। इतना कहनेसे अगर आप लोगोंको संतोष न होता हो तो लीजिये और प्रमाण।

नंदिसूत्र बत्तीस सूत्रोंमें है। उसी नंदिसूत्रमें महानिशीथ सूत्रका नाम आता है। उसी महानिशीथसूत्रमें लिखा है कि—'जिनमंदिर करानेवाले बारहवें स्वर्गमें जाते हैं'। अब विचारनेकी बात है कि—जो समकितवंत जीव हैं, वे वैमानिकका आयुष बांधते हैं। इस लिये जिनमंदिर करानेवाले खास करके सम्यग्दृष्टि हैं, ऐसा सिद्ध होता है। और समकितवंत जीवोंके लिये आज्ञा और धर्म होनेसे हम लोग इस बातका उपदेश देते हैं।

अब रही संघनिकालनेके विषयकी बात। इसके विषयमें समझना चाहिये कि—परमात्मा महावीर देवके समय श्रेणिक-कोणिक वगैरह कई राजे, रथ (जिन रथोंको कई जगह 'धर्म-रथ' की उपमा दी है) घोडे, हाथी, पैदल वगैरह चतुरंगी सेनाके साथ बडे आडंबरसे भगवान्‌को वंदणा करनेको जाते थे। इसके सिवाय ज्ञाताधर्मकथा तथा अंतगडदशांगमें शत्रुंजय

पर्वतका नाम जगह २ आता है । उस तीर्थपर हजारों मुनि-राज सिद्ध० बुद्ध० मुक्त हुए । उस पर्वतके दर्शन करनेके लिये, भरत महाराजादि कई राजाओंने तथा सेठसाहुकारोंने संघ निकाले हैं, अतएव उनके नामोंपर 'संघपति' ऐसे उपनाम लगे हैं । इससे सिद्ध होता है कि-संघ निकालनेकी परंपरा सूत्रोंके अनु-सार ही है ।

"प्रश्न ३ आणदकांमदेव आददे १० श्रावक हुवे है वे महा ऋद्धिवांन बारे व्रतधारी हुवे उणांने जैन मंदिर वो सीग-कीउन कडायें अगर कडायें वो करायें हुवे तो पाठे वतलावे ।"

उत्तर-परमात्मा महावीर देवके समयमें श्रावकोंके मकानोंमें मंदिर थे और भगवान्‌की पूजा भी करते थे । उववाई सूत्रमें चंपा-नगरीका वर्णन आया है, वहाँ पर 'अरिहंतचेइयाइं बहुलाइं' इत्यादि पाठोंसे, उस समयमें अरिहंतोंके अनेक मंदिर थे, ऐसा सिद्ध होता है । दूसरी यह बात है कि-आणंदादि श्रावकोंने अपने जीवनमें जो २ कार्य किये हैं, उन सभीका उल्लेख सूत्रोंमें नहीं आया है । इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि उन्होंने मंदिर नहीं बनवाये थे, या संघ नहीं निकालेथे । आणंदादि श्रावकोंने प्रतिमाको प्रमाण की है, इस बातका पुरावा यह है कि व्रत उच्चारणके समय सम्यक्त्वका आलावा आया है । जिसमें समकितकी शुद्धिके लिये अन्यदर्शनीय, अन्यदर्शनके देव तथा अन्यमतियोंने स्वीकार की हुई जिनप्रतिमाको वांदु नहीं-पूजा न करुं, इत्यादि पाठ मिलते हैं । और इससे जिन-प्रतिमा तथा जिनमंदिर थे, यह भी सिद्ध होता है । तथा जहाँ प्राणातिपात विरमण, वगैरह बारहव्रत लिये हैं, वहाँ अनेक

प्रकारके नियम किये हैं। उन नियमोंमें यदि जिनमंदिर करानेमें पाप होता तो यह भी नियम कर देते कि-जिनमंदिर करवाऊं नही। लेकिन ऐसे नियमके नहीं करनेसे निश्चित होता है कि-वे जिनमंदिर बनवानेमें आरंभ नहीं समझते थे। उन श्रावकोंने भी जिनमंदिर बनवाए हैं, इसका पुरावा नंदीसूत्रके ४६५ वें पृष्ठमें यह है:—" **उवासगदसासु णं समणोवासगाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ....**" इत्यादि। इसका मतलब यह है कि-उपासकदशांगसूत्रमें आणंदादि श्रावकोंके नगर, उद्यान, चैत्य (जिनमंदिर) वनखंड, समवसरण, राजे, मात-पिता, धर्मगुरु तथा धर्मकथा इत्यादि अनेक चीजोंका वर्णन है। ऐसे नंदीसूत्र तथा समवायांगमें भी कहा है। इससेही सिद्ध होता है कि आणंदादि श्रावकोंके वहाँ मंदिर थे। और अगर उन्होंने नहीं बनवाए थे तो 'उनके मंदिर' ऐसे क्योंकर कहते ?।

यहाँ पर 'चैत्य' शब्दका 'ज्ञान' 'साधु' या 'बगीचा' अर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि-इन्हीं अर्थोंको कहनेवाले 'धर्मकथा' 'धर्मगुरु' तथा 'उद्यान' शब्द लिये हुए हैं।

अब संघकी बात यह है कि-उस समयमें भी गिरिराजश्री शत्रुंजयादि तीर्थ विद्यमान ही थे, तो उस समयके श्रावक अवश्य संघ निकालते थे। संघ निकालनेकी परिपाटी नयी और शास्त्रविरुद्ध नही है, यह बात दूसरे प्रश्नमें अच्छी तरह दिखला दी है। हमारी समझमें प्रश्न पूछनेवाले तेरापंथी महानुभाव संघका मतलब ही नहीं समझे हैं। हम पूछते हैं कि-

आप लोग पाट उत्सव करते हैं, हजारों आदमी इकठे हो करके आनंद मनाते हो। हजारों श्रावक–श्राविका मिलकरके तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेके निमित्त चातुर्मासमें जाते हो, वहाँ आपस आपसमें खानपानसे भक्ति करते हो। बतलाओ, इसका नाम संघ है कि नहीं ?। क्या तुम्हारे माने हुए संघके ऊपर शृंग होते हैं ?। बडे आश्चर्यकी बात है कि–खुद संघ निकालते रहते हो, और दूसरोंको निषेध करते हो। हमें इस बातका जवाब दीजिये कि–किस सूत्रके कौनसे पाठके आधारसे आप लोगें उपर्युक्त प्रवृत्ति कर रहे हो ?। हमें बडी भावदया आती है कि–सच्चे तीर्थके वैरी हो करके, आप लोग दूसरे रास्ते चले जा रहे हो।

" प्रश्न–४ पाश्यांण षो रत्नांरी जिन प्रतामारी अवलतो गत जात इंद्री कीसी दोयम जिन प्रतमामें जिवरो भेद गुणसठांणो और डंडककीसो पावे तीसरी प्रज्याये प्रांण सरीर जोग उप्पीगो कर्म आतमा और लेस्या कीतनी ओर कोंनसी कोनसी पावेः चोथा जिनप्रतिमा शनि या अशनि तस्य या थावर सो ईन कुल वार्ता का उत्तर फरमावेः।

उत्तर–प्रतिमामें गति, जाति, इन्द्रिय, जीवका भेद, गुणस्थानक, दंडक, पर्याय, प्राण, शरीर, जोग, उपयोग, कर्म, आत्मा, लेश्या, सन्नी या असन्नी, त्रस अथवा स्थावर ये बातें पूछनेवाले तेरापंथी महानुभावोंको समझना चाहिये कि नामनिक्षेपेमें पूर्वोक्त वस्तुएं जितनी पाई जाँय, उतनी ही जिनप्रतिमामें पाई जाती हैं। जैसे नामको मान्य रखते हो, वैसे ही स्थापनाको भी अवश्य माननाही पडेगा। क्योंकि स्थापना जड है। तो

क्या नाम जड नहीं है? नामभी जड है। नामको मानकरके भी स्थापनाको नहीं मानना, इस जैसी अज्ञानता दूसरी क्या हो सकती है? लेकिन ठीक है, जिनके अन्तःकरणोंमें मिथ्यात्वरूप पिशाचने प्रवेश किया है, वे तत्त्वको कैसे देख सकते हैं? । देखिये, जैसे नाम और नामवालेका संबंध है वैसे स्थापना और स्थापनावालेका भी संबन्ध है। अतः नाम माननेवालोंको स्थापनाको भी मान देनाही चाहिये। अकेले नामसे कभी कार्य नहीं हो सकता। जैसे किसी शहेरमें किसीका लडका गुम हो गया और उस लडकेके पिताने पोलीसमें यह सूचनादी कि—मेरा केसरीमल्ल नामका लडका गुम हो गया। इतनेही मात्रसे पुलीसकी यह ताकत नहीं है कि—सिर्फ नामसेही उसकी तलाश करके उसके पिताको दे दे। चाहें पुलीस भलेहीं केसरीमल्ल नामके हजारों लडकोंको इकठे करे, परन्तु जब तक जो केसरीमल्ल गुम हो गया है, उसकी आकृति वगैरहका ज्ञान पुलीसको नहीं होगा, वहां तक उसका सारा परिश्रम व्यर्थही होगा। वैसे सिवाय प्रतिमा माननेके केवल नामसे काम चलता नहीं है। 'महावीर' इस नामका कई जगह प्रयोग होता है। 'महावीर' हनुमानका नाम है, 'महावीर' सुभटका नाम है। 'महावीर' किसी व्यक्तिका नाम है। और 'महावीर' परमात्मा 'वीर' का भी नाम है। अब 'महावीर' 'महावीर' 'महावीर' ऐसा जाप करनेसे कोई यह पूछे कि—कौनसे महावीरका जाप करते हो? तब यह कहना ही पडेगा कि—ज्ञातपुत्र, त्रिशलानन्दन, क्षत्रियकुंड ग्राममें जन्म लेने वाले, तथा सात हाथका जिनका शरीर था, ऐसे महावीर देवका जाप करते हैं। जब महावीर देवकी प्रतिमा हमारे

दृष्टिगोचर होगी, तब हमें विशेष स्पष्टिकरण करनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी । एक दूसरी बात लीजिए । प्रश्न पूछनेवाले महानुभावोंसे हम यह पूछते हैं कि—तुम्हारा कोई साधु, पघडी तथा धोती पहन करके पाटपर बैठ जाय, तो उसको आप साधु कहेंगे या नहीं ? क्योंकि प्रतिमा अर्थात् मूर्तिपर जिसका ख्याल नहीं है, उसके लिये तो पघडी पहना हुआ हो, या खुले सिर हो, दोनों एक समान हैं । नाममें तो फर्क हुआ ही नहीं है । परन्तु नहीं, यही कहना पडेगा कि–वह साधु नहीं है। क्योंकि उसमें साधुका वेष नहीं है–साधुकी आकृति नहीं है–साधुकी मूर्ति नहीं है । कहिये, मूर्तिमानना सिद्ध हुआ कि नहीं ? । सज्जनो ! निर्विवाद सिद्ध 'स्थापना निक्षेप' का निषेध करके क्यों भवभ्रमण करते हो ? । प्रतिमाको उपचारित नयसे साक्षात् जिनवर मान करके कई भक्तजनोंने सेवा–पूजा की है । वह बात चौदवें प्रश्नके उत्तरमें विशेष रूपसे लिखि जायगी । अतएव यहांपर लिखना उचित नहीं समझते ।

महानुभाव ! प्रतिमापर द्वेष होनेसे उलटे प्रश्न करते हो परन्तु वेही प्रश्न जिनवाणी परभी घट सकते हैं । प्रभुजीकी वाणीमें जो पेंतीस गुण थे, वे पेंतीस गुण स्याहीसे कागजपर लिखी हुइ वाणीमें नहीं हैं । तथापि स्थापना रूप वाणीको जिनवाणी मान रहे हो तथा अपने बंधुओंको 'चलो जिनवाणी सुननेको' ऐसा कहकर लेजाते हो । भला, कागज और स्याही जिसमें शेष रही हुई है, उसको जिनवाणी माननेमें तुम्हें जरासाभी संकोच नहीं होता है, और जिनप्रतिमाको जिनवर माननेमें पेटमें दर्द होता है, यह कितनी आश्चर्य की बात है ?

"प्रश्न-५ श्री केवलग्यानी जिनेसर देवमें जीवरो भेद गुणठांणा ओर डंडक कीसो पावै और जिनेस्वर देवकी गती जात काया कीसी और जिनैस्वर देवमैः प्रजा प्राण जोग उप्पीयोग लेश्या आत्मा कीतनी कितनी कोनसी कोनसी पावैंः और जिनेस्वर देव शनि हैं या अशनि हैं सो उनका उत्र वत्तीस सासत्रसे दिरावै"

उत्तर—केवलज्ञानी जिनेश्वरमें गर्भज पंचेन्द्रियका एक भेद है। केवलज्ञानी तीसरे शुक्ल ध्यानमें रहें, वहाँतक उनको तेरहवाँ गुणस्थानक होता है। और जब चतुर्थ शुक्ल ध्यानके पायेमें वर्तते हुए शैलेशी अवस्थामें रहें, उस समय चौदहवाँ गुणस्थानक होता है। १४ वे गुणस्थानकमें पांच अक्षरोंका उच्चारण करें, उतनेही समय रह करके अन्तिम समयमें समस्त कर्मोंका क्षय करके सिद्ध गतिमें जाते हैं। केवलज्ञानी मनुष्य दंडकमें लाभे। गति निर्वाणकी। जाती पंचेन्द्रियकी। काय त्रसकाय। पर्याय मनुष्यत्वका। प्राण दस होते हैं, पांच इन्द्रिय, तीनबल, श्वासोश्वास तथा आयुष्य। योग सात १ सत्यमनोयोग, २ असत्यामृषामनो योग, ३ उसी तरह दो वचनके, ४ कार्मणकाययोग (समुद्घातके समय), ५ औदारिककाययोग, ६ औदारिक मिश्रकाययोग (समुद्घातके समय), ७ केवलज्ञान तथा केवलदर्शन स्वरूप दो उपयोग होते हैं। तेरहवाँ गुणठाणा हो वहाँतक शुक्लेश्या होती है, चौदहवें गुणस्थानकमें लेश्या नहीं होती। यद्यपि आत्मातो सच्चिदानंदमय है, परन्तु यदि आत्माकी आठ प्रकारसे विवक्षा कीजाय, तो 'कषाय आत्मा' को छोडकरके योगात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चारित्रात्मा, वीर्यात्मा तथा द्रव्यात्मा ये सात आत्मा हैं। अब

केवलज्ञानी न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं। क्योंकि–मनइन्द्रियजन्य चेष्टाको संज्ञा कहते हैं। संज्ञा जिसको होती है, वह संज्ञी कहा जाता है। केवली भगवान्‌को द्रव्यमन है, परन्तु मनइन्द्रियसे कार्य लेते नहीं हैं। अर्थात् उससे भूत–भविष्य–वर्तमानका विचार करते नहीं है। अपने केवलज्ञानसे ही साक्षात् करते हैं। पन्नवणाजीके ३१ वें पदमें केवलीसंज्ञी नहीं तथा असंज्ञी नहीं, ऐसा दिखलाया है।

प्रश्न. ६–पंचमाहाव्रतधारी छंदमसत मुनीमैं जीवरो भेद गुणठांणों डंडक कीसो कीसो पावै इणांरी गत जात इंद्र काया कीसी ओर प्रजा प्रांण, शरीर जोग उप्पीयोग आतमा लेश्या कीतनी २ कोंन २ सी पावैः।

उत्तर–छद्मस्थ मुनिको, जीवके भेदोंमेंसे गर्भजपंचेन्द्रिय मनुष्यके भेदमें गिना है। गुणस्थानक छट्ठेसे बारहवें तक होते हैं। दंडक मनुष्यदंडक। गति देवलोककी होती है, क्योंकि–पंचमहाव्रत धारी छद्मस्थ मुनिको सम्यक्त्व अवश्य होता है। और सम्यक्त्ववाला जीव वैमानिकके सिवाय दूसरा आयुष्य नहीं बांधता है। कदाचित् पहिले किसी गतिका आयुष्य बांधा हो, और पीछेसे मुनिपणा अंगीकार किया हो, तो छद्मस्थ मुनि, पहिले आयुष्य बांधा हो, उस गतिमें जाता है, यदि पहिले आयुष्य न बांधा हो तो अवश्य देवलोकमें जाता है। जाति पंचेन्द्रियकी। इन्द्रियोंमें पंचेन्द्रिय। काय त्रसकाय। पर्याय मनुष्यत्व। प्राण दस होते हैं, शरीर मुख्य औदारिक होता है, पीछेसे लब्धिसे वैक्रिय तथा आहारक कर सकते हैं। भव आश्रयी वैक्रियशरीर वालेको मुनिपणा नहीं होता है।

छद्मस्थ मुनिको योग तेरह होते हैं, कार्मण तथा औदारिकमिश्र ये दो योग नहीं होते हैं। इसका विवेचन इस तरह है:--

छट्ठे गुणठाणे वाले मुनिको आहारक तथा वैक्रियलब्धिएं यदि हुई हों तो प्रमत्तगुणठाणेमें ४ मनके, ४ वचनके, १ औदारिक, १ वैक्रिय, १ वैक्रियमिश्र, १ आहारक तथा आहारकमिश्र ये तेरह होते हैं। और अप्रमत्तमें आहारकमिश्र तथा वैक्रियमिश्र दोनोंके न होनेसे ग्यारही होते हैं। अपूर्वादिक पांचों-गुणठाणोंमें ४ मनके, ४ वचनके तथा १ औदारिक काययोग। यहाँपर अति विशुद्ध चारित्र होनेसे लब्धि हेतुक चार योग नहीं होते हैं। अत एव ९ योग होते हैं। अब यदि छट्ठे गुण-स्थानकवाले मुनिको आहारकलब्धि न हो तो ११ योग। वैक्रिय भी न हो तो ९ योग। वैक्रिय न होवे और आहारक होवे तो भी ११ योग होते हैं। सातवेंमें मिश्र कम करना। उपयोग सात होते हैं:-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षु-दर्शन, ये चार तो नियमेन होते हैं। यदि अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ हो तो छे होते हैं। और यदि अवधिज्ञान न हुआ हो और मनःपर्यव ज्ञान हुआ हो तो पांच होते हैं तथा दोनों हुए हों तो सात उपयोग होते हैं। छद्मस्थ मुनिको छट्ठे गुण-स्थानकसे दशवें गुणस्थानक तक आठों आत्मा होते हैं, ग्यार-हवे तथा बारहवे गुणस्थानकवालेको कषायआत्मा नहीं होनेसे सात आत्मा माने जाते हैं। अब रही लेश्या। छट्ठे गुणस्थानक वाले छद्मस्थ मुनिको तेजो, पद्म तथा शुक्ल ये तीन भावलेश्या होती हैं। द्रव्यसे छ लेश्या होती हैं। यद्यपि चतुर्थकर्मग्रन्थकी ५३ वीं गाथामें छे गुणस्थानकोंमें छ लेश्या लिखी हैं। छट्ठे-गुणस्थानकवालोंके, दीक्षा लेनेके बाद छे लेश्याओंमेंसे कोई

भी लेश्याएं होवें तो वे आदिकी तीन ही समझनी, परन्तु भावतो ऊपरकी तीनही समझनी । सातवें गुणस्थानकमें तेजो, पद्म तथा शुक्लही होती हैं। कारण यह है कि–आर्त–रौद्रध्यान नहीं होनेसे अति विशुद्धता होती है । आठवें गुणस्थानकसे बारहवें गुणस्थानक पर्यन्त छद्मस्थ मुनिको एकही शुक्ल लेश्या होती है ।

प्रश्न–७ ज्ञातासूत्रमैं पांचमा अध्येमें ज्ञानदर्श चात्ररूपी जात्रा कही और आप श्रेतुर्जा वगेरकी जतरा परूपते हो सो कीस सत्राकीरूसे ।

उत्तर––ज्ञातासूत्रके पांचवें अध्ययनमें पृष्ठ ५७९ में ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप संयमादि रूपी यात्रा कही है । सो ठीक है । उस बातको हम लोग भी मान्य करते हैं । परन्तु इससे शत्रुंजय वगैरहकी यात्राका निषेध नहीं होता है । देखिये, उसी अध्ययनके ५९२ वे पृष्ठमें थावच्चा अणगार, एक हजार साधुके साथ पुंडरीक पर्वत पर गये हैं। धीरे धीरे उस पर्वत पर चढे । इत्यादि पाठ है । वह पाठ यह है:––

"तएणं से थावच्चापुत्ते अणगारसहस्सेणं सद्धिं संपुरिवुडे जेणेव पुंडरीए पव्वये तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता पुंडरीअं पव्वयं सणिअं सणिअं दुरुहंति"

अर्थात्–तब हजार अनगारोंसे परिवृत हुए थावच्चापुत्र, जहाँ पुंडरीक पर्वत है, वहाँ आते हैं । आ करके उस पुँडरीक पर्वत पर धीरे धीरे चढते हैं ।

अब यह विचारनेकी बात है कि-यदि वह तीर्थका स्थान न होता तो दूसरे अनेकस्थानोंको छोड करके थावच्चापुत्र क्यों वहाँ जाते?। महानुभाव! थावच्चा अणगार जैसे पवित्र, महात्मा, तद्भवमुक्तिगामी पुरुष, जो कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र वगैरहरूपी यात्राको मानते हैं, उन्होंने भी पुंडरीक पर्वत पर जा करके मुक्तिका लाभ लिया। अन्यत्र नहीं। शत्रुंजयका ही पुंडरीक पर्वत नाम है। वह नाम, ऋषभदेव स्वामीके पुंडरीक गणधर पांच क्रोड मुनिके साथ चैत्रीपूर्णिमाके दिन मोक्ष गये, तवसे पडा है। यह बात गुरुकुलमें रहनेवाले लोगही जान सकते हैं। परन्तु तुम्हारे जैसे स्वयंभू लोग कैसे जान सकते हैं?। उपमान-उपमेयके नियमसे भी ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी यात्रासे अन्य यात्रा सिद्ध होती है।

प्रश्न---८ उत्राधेनरा वारमा अध्येनमें ब्रह्मचरियैरूपी तीरथ वनायो और आर श्रेतुजा आदी तीर्थ परूपते हो, सो कीस शस्त्रकी रूसे सो वत्रीस श्रुत्रमें पाठ.वतलाओ--

उत्तर--उत्तराध्ययन सूत्रके पृष्ठ ३७७ में १२ वें अध्यनकी ४६ वीं गाथामें तुम्हारे कहनेके मुताविक बात है। परन्तु वहाँ हरिकेशीजीने, ब्राह्मणोंको हिंसा जन्य--कुरुक्षेत्रादि तीर्थोंसे विमुख करनेके लिये उपदेश दिया है। वहाँ उपमा दिखलाते हुए कहा है:-विनय है मूल जिसका, ऐसा जो धर्म, उस रूपी ह्रद, और ब्रह्मचर्यरूपी निर्मल तीर्थ, उसमें स्नान करनेसे शुद्धि होती है।

इत्यादि उपदेशसे गंगा-गोदावरी वगैरह तीर्थोंका निषेध किया है। परन्तु शत्रुंजय, गिरनार इत्यादि पवित्र तीर्थोंका

निषेध नहीं किया है । ब्रह्मचर्य रूपी जब तीर्थ कहा, तब यहाँ पर उपमान-उपमेय भाव संबन्ध घटाया है । ब्रह्मचर्यको तीर्थतुल्य कहा, तब दूसरा कोई तीर्थ अवश्य होना चाहिये, यह बात अर्थात् सिद्ध होती है । और वह तीर्थ शत्रुंजयादि हैं ऐसा हमने सातवें प्रश्नमें दिखला दिया है । उसी तरह अंतगडदशांगसूत्रके पृष्ठ ९ मैं भी पाठ इस तरहका है:-

"एवं जहा अणीयसे कुमारे, एवं सेसावि अणंतसेणे, अजितसेणे, अणिहिअरिउ, देवसेणे, सत्तुसेणे छ अज्झयणा, एगगमो वत्तीस उदातो, वीसं वासा परियाउ, चोद्दसपुव्वाइं सेत्तुंजेसिद्धा"

अर्थात्—जैसे अणीयस कुमारके लिये ऊपर कहा है, वैसे ही दूसरे भी अनंतसेन, अजितसेन, अजीहितरिपु, देवसेन, शत्रुसेन इन मुनियोंके लिये भी जानना, अर्थात् अणीयस वगैरह छे मुनि शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए ।

ऐसे २ पाठोंके आधारसे हम शत्रुंजय तीर्थकी परूपणा करते हैं। ऐसे एक-दो पाठ नहीं, सूत्रोंमें शत्रुंजय संबन्धि अनेकों पाठ मिलते हैं । जिस तीर्थपर अनन्त मुनि मुक्ति गये हैं तथा जिसके विषयमें सूत्रोंमें स्पष्ट पाठ मिलते हैं, उस तीर्थके लिये भी आप लोग परूपणा न करें तो आपके शिरपर 'उत्सूत्रभाषी पनेका दोष लगेगा, इस बातको विचारो ।

प्रश्न—९ प्रश्नव्याकरणरा आश्रवदुवार पेलामे देवल प्रतीमा वास्ते पृथ्वीकाय हणे जीणने मंदबुध्या कह्यो तो फीर आप देवल वगेरे करणेमे धर्म कीस शास्त्रकी रूसे परुपते हो.

उत्तर–प्रश्नव्याकरण आश्रवद्वार पहिलेमें देवकुल, प्रतिमा इत्यादि बहुत चीजें गिनाइ हैं। उन कार्योंको करते हुए पृथ्वीकायकी हिंसा करनेवालेको मंदबुद्धिया कहा है। परन्तु उसके अधिकारी आगे चलकरके अनार्य दिखलाये हैं। पृष्ठ ३२ से ४० तकका अधिकार देखनेसे मालूम हो जायगा। उसमें मंदबुद्धिया मिथ्यादृष्टिका विशेषण है।

पहिले तो यह दिखलाओ कि आप लोग मंदबुद्धिया किसे कहते हैं ?। क्या कमबुद्धिवालेको मंदबुद्धिया कहते हैं ? यदि ऐसा ही कहेंगे, तब तो केवलीकी अपेक्षासे सभी मंदबुद्धिये गिने जायेंगे। परन्तु नहीं, यहां पर रूढ अर्थ लिया गया है। मंदबुद्धिया, मिथ्यात्वीको कहते हैं। समकितदृष्टिजीवकी करणीसे जो हिंसा होती है, उसे हिंसा कही ही नहीं है। और यदि हिंसा कहोगे तो नीचे लिखी हुई बातोंको करनेवाले, तुम्हारे मन्तव्यानुसार मंदबुद्धिये कहेजायेंगेः—

१ मल्लीनाथभगवान्ने छे राजाओंको प्रतिबोध करनेके लिये २५ धनुष्यकी सुवर्णकी पोली पुतली बनवाई। उसमें आहारके कवल छ महीनों तक भरे। उसमें असंख्य जीव उत्पन्न हुए तथा मरे। अत्यन्त बदबू फैली। अब देखिये काम धर्मके निमित्त करते हुए बीचमें अनन्त जीवोंकी हानी हुई, तो तुम्हारे हिसाबसे मल्लीनाथभगवान् मंदबुद्धिये होंगे।

२ ज्ञाताजीमें सुबुद्धिमंत्रिने, राजाको प्रतिबोध देनेके लिये खाईका दुर्गंधी, जीवोंके पिंडवाले जलको घडेमें वारंवार परावर्तन किया। सुगंधी द्रव्य मिलाया, उसमें जीवोंका नाश हुआ। तो उसकोभी मंदबुद्धिया कहना चाहिये।

३ कोणिकराजा वगैरह वडे आडंवरसे प्रभुको वंदणा करनेके लिये गये। वीचमें असंख्याता जीवोंकी हिंसा हुई, तो उनको भी मंदवुद्धिया कहना चाहिये।

४ नदीमें पडी हुई साध्वीको साधु निकाले, उसमें अप्कायके जीवोंकी हिंसा होती है। स्त्री स्पर्शका दोष लगता है, तो तुम्हारे हिसावसे वह साधुभी मंदवुद्धिया हो जायगा।

इत्यादि वहुतसे ऐसे धर्मके कार्य हैं, जिनमें हिंसा दिखाई देती है, परन्तु वह हिंसा गिनीं नहीं जाती। और यहाँपर जो 'देवमंदिर' तथा 'प्रतिमा' कहे हैं, वे 'जिनमंदिर तथा 'जिन प्रतिमा' नहीं हैं, ऐसा निश्चय सिद्ध होता है। क्योंकि-उसी सूत्रके ३२९ वें पृष्ठमें दयाके ६० नाम दिखलाये हैं। उनमें ५७ वाँ नाम 'पूजा' दिखलाया है। (किसी भी जगह हिंसाकी करणीमें 'पूजा' का नाम आया) तथा उसी सूत्रके ४१५ वें पृष्ठमें चैत्य-प्रतिमाकी वेयावच्च (भक्ति) करता हुआ साधु निर्जरा करे, ऐसा अधिकार है। इससे भी सिद्ध होता है कि-पूर्वका पाठ अनार्योंका है। अनार्यका पाठ ले करके तीर्थंकर महाराजकी पवित्र पूजाका निषेध करनेको तय्यार होते हो, इससे तुम्हारे पर भावदया उत्पन्न होती है। कुछ समझविचार करके लिखो-वोलो जिससे भव भ्रमणता न हो।

प्रश्न—१० प्रश्नव्याकर्णरा पांचमा आश्रवदुवारमै मीग्रहारा नांव चालीया जीणमे प्रतमारो नांव भी सांमल चल्यीयो, ठांणांयंगजी तीजे टांणे मिग्रो अनर्थरो मूलकयो तो फेर मीग्रासे तीर्णो कस सास्त्रकी रूसे परूपते हो, प्रतिमा प्रतक्ष मीग्रामें चाली हैं।

उत्तर-प्रश्न व्याकरणके पांचवें आश्रवद्वारमें परिग्रहके नाम आए। उसमें 'प्रतिमा' का नाम नहीं है। वहाँ "चेइयाणि" तथा 'देवकुल' ऐसे दो शब्द आये हैं 'चेइआणि' शब्दका अर्थ 'चैत्यवृक्षान्' ऐसा करनेका है। क्योंकि-शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं। अधिकार देखना चाहिये। खैर, तिसपर भी यदि आपलोग 'चेइयाणि' शब्दका अर्थ 'प्रतिमा' करते हैं, और 'देवकुलका अर्थ' 'देवमंदिर' करते हैं, तोभी इससे 'जिनप्रतिमा' तथा 'जिनमंदिर' ऐसा अर्थ नहीं निकलेगा।

अच्छा, अब 'परिग्रह' किस खेतकी चिडीया है? यह भी प्रश्न पूछने वालोंको मालूम नहीं है। दशवैकालिक सूत्रके छठवें अध्ययनकी २१ वीं गाथामें कहा है:-"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तं महेसिणा" मूर्च्छाहीको परिग्रह कहा है। ऐसा परमात्मा महावीर देव कहते हैं। यदि आप लोग 'प्रतिमा' को परिग्रहमें गिनते हो, तो दिखलाओ, उसके ऊपर किस प्रकारकी मूर्च्छा होती है? और यदि वस्तु ग्रहण करनेहीमें परिग्रहका दोष लगाते हो तो, तुम्हारे साधु परिग्रहधारी गिने जायेंगे, क्योंकि वस्त्र-पात्र उपकरण वगैरह रखते हैं। हमें बडा आश्चर्य होता है कि- जहाँ केवल 'चैत्य' शब्द मिलता है, वहाँ तो 'प्रतिमा' अर्थ करके जिनप्रतिमाके निषेध करनेको तय्यार होते हो, और जहाँ 'अरिहंतचेइयाणि' शब्द आता है, वहाँ तो दूसराही अर्थ करके मन-मोदक उडानेकी कोशिश करते हो। यह भी तुम्हारी बुद्धिका एक अपूर्व नमूना ही है।

प्रश्न--११ ठांणायंगजीरे दुजे ठांणे धर्म दोय कया, सूत्र-

धर्म ओर चारीत्रधर्म, सो प्रतिमा पूजणेमे वो मंदीर कराणेमे वो संग कडाणेमे कोनसा धर्म है ।

उत्तर–ठाणांगके दुसरे ठाणेके पृष्ठ ४९ में धर्म दो प्रकारका कहाः–श्रुतधर्म तथा चारित्र धर्म, ('सूत्रधर्म' यह तो प्रश्नही झूठा है) इन दोनों प्रकारके धर्मोंके कहनेसे दूसरे धर्मोंका निषेध नहीं होता है। जैसे उसी ठाणांगके १०२–१०३ पृष्ठमें दो प्रकारके बोधी दिखलाए हैं । ज्ञानबोधी तथा दंसणबोधी। तथा दो प्रकारके बुध दिखलाए हैं । ज्ञानबुध-दंसणबुध। तो इससे अन्यबोधी तथा अन्य बुधोंका निषेध नहीं हो सकता है । दूसरे ठाणेमें दो दो वस्तुएं गिनाई हुई हैं । अतएव उसमें भी दोही वस्तुएं लिखी हैं । इसके सिवाय देखिये, तीसरे ठाणेमें अरिहंतके जन्मके समय, दीक्षाके समय तथा केवलज्ञानके समय मनुष्यलोकमें इन्द्र आते हैं, ऐसा अधिकार है, तो इससे क्या निर्वाणके समय तथा च्यवनके समय इन्द्र नहीं आते हैं, ऐसा सिद्ध होता है ? कदापि नहीं । पांचो कल्याणकोंके समय इन्द्र आते हैं । इस तरह दो या तीन वस्तुएं गिनानेमे अन्य वस्तुओंका अभाव या निषेध समझ लेना, यह बडी भारी भूल है ।

प्रतिमापूजनी, मंदिर कराना तथा संघ निकालना ये दर्शनधर्ममें कहे जाते हैं । जरा आँखें खोल करके तीसरे ठाणेमें पृष्ठ ११७ वाँ देखो, उसमें लिखा है कि–जिन प्रतिमाकी तरह साधुकी भक्ति करता हुआ जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्मको उपार्जन करता है । ' वह पाठ इस तरह हैः—

"तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउअत्ताए कम्मं

पगरेंति। तं जहा णो पाणे अइवाइत्ता हवइ, णो मुसं वइत्ता हवइ तहारूवं समणं वा वंदित्ता नमंसित्ता सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता कल्लाणं मगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेत्ता मणुन्नेणं पीइकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता हवइ इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउअत्ताए कम्मं पगरेंति।"

अर्थात्—इन तीन स्थानों करके जीव शुभ दीर्घ आयुष्य कर्म उपार्जन करता है। वे तीन स्थान ये हैं:-प्राणोंको नहीं मार करके अर्थात् जीवदया करके झूठ नहीं बोल करके अर्थात् सत्य बोल करके और तथारूप दयालु श्रमणको वन्दणा करके-नमस्कार करके-सत्कार दे करके-सम्माम दे करके तथा कल्याण-मंगलके निमित्त जिनप्रतिमाकी तरह उस श्रमणकी पर्युपासना करके तथा उस श्रवणको मनोज्ञ-प्रीतिकारक अशन-पान खादिम-स्वादिम आहार देकरके-प्रतिलाभ करके जीव शुभ दीर्घायु उपार्जन करता है।

देखो, इस पाठमें जब जिन प्रतिमाकी उपमाही दी, तब जिन प्रतिमाकी पूजा स्वतः सिद्ध हुई।

प्रश्न—१२ उत्राधैनरा २८ मा अध्यनेमै २६ मी गाथामे कर्म खपाणवरी करणी २ केही, एक तप दुसरे संजमः सो प्रतिमा पूजने वो मंदिर कराने वो सीगकडानेमें कोनसी करणी हुई।

उत्तर-उत्तराध्ययनके २८ वें अध्ययनकी ३६ वीं गाथामें कर्म खपानेकी करणीएं तप और संयम दोही कहते हो, यह ठीक नहीं है। क्योंकि-उसके ऊपरकी याने ३५ वीं गाथामें कहा है कि:—

"नाणेण जाणइ भावे दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसुज्झइ" ॥ ३५ ॥

और आपलोग ३६ वीं गाथासे कर्म खपानेकी करणीएं दो कहते हैं। यह सरासर सत्य विरुद्ध है। क्योंकि, उसी गाथासे चार करणीएं निकलती हैं। देखिये, उस गाथामें 'खवित्ता पुव्व-कम्माइं संजमेण तवेण य' ऐसा पद है। इसमें 'य' याने 'च' शब्द रक्खा हुआ है। 'च' शब्दसे ज्ञान-दर्शनको ग्रहण कर लेना चाहिये। अगर वैसे न किया जाय, तो 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी त्रिपुटीकी विद्यमानतामें मोक्ष होता है' यह बात अन्यथा हो जायगी। 'दर्शन' शब्दके आनेसे भगवान्की आज्ञाकी सद्दहणा आजाती है। और जहाँ भगवान्की आज्ञा है, वहाँ प्रतिमाको पूजना, मंदिर कराना तथा संघ निकालना वगैरह करणीएं आही जाती हैं।

प्रश्न—१३ दशवीकालकरा पेला अधेनरी पेली गाथामे 'अहिंसा संजमो तवो' कयो ओर सुगडायंगजीरे पेले अध्येनमे चोथे उदेशे गाथ १० में ये वात केही जीन करणीमें कींचीत्त-मात्र हींस्या नही ताकी करणी ज्ञांनरो सारकेयो ओर आप देवल प्रतिमाकी ध्रव पूजा करणेमे वो संग कडानेमैं जीव हंस्या करणेमे दोस नही परुपते हो सो प्रतक्षे हंस्या होती हैं ओर

श्री जिनेश्वरदेवने उपर लीखी ये शास्त्रोंमें हिंसा करणी साफ मनाई की हैं।

उत्तर—दशवैकालिककी पहली गाथा तथा सूयगडांगसूत्रके पृष्ठ ९५ में पहले अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेकी १० वीं गाथा तथा ग्यारहवें अध्ययनकी (पृष्ठ ४२६ में) दशवीं गाथामें 'किंचित्मात्र हिंसा न करनी' यह ज्ञानीका सार कहा है [ज्ञानकासार कहना भूल है], यह बात हमको सर्वथा मान्य है। इस बात पर सर्वथा अमल भी होता है। क्योंकि तीर्थंकरकी आज्ञामें धर्म है। जहाँ जहाँ तीर्थंकरकी आज्ञा है, वहाँ वहाँ धर्म ही हैं। तीर्थंकर महाराजने अनुकंपा लाकरके गोशाले जैसे शिष्याभासको बचाया। मेघकुमारने ससलाके जीवको बचाया (देखो ज्ञातासूत्र), परन्तु अफसोसकी बात है कि—आप लोग पूर्व कर्मके उदयसे सत्य बातको छोड करके, असत्यमें फँस गये हो। हिंसा—अहिंसाके स्वरूपको भी अभी तक नहीं समझ सके हो। उववाई सूत्रमें कोणिकराज बडे आडंबरसे चतुरंगी सेनाके साथ प्रभुको वंदणा करनेके लिये गये, उसकी शाख, भगवती सूत्रके तेरहवें शतकके छठवें उद्देशेमें उदायनके पाठमें **"जहा कोणिओ उववाइए जहा पज्जुवासं"** ऐसा कह करके गणधरोंने दी है। उस पुरावेको देख करके अनेक राजे-महाराजे सेठ-साहुकार, आचार्य उपाध्यायादिकोंको वंदणा करनेके निमित्त गये हैं। ऐसा बहुत सूत्रोंमें देखनेमें आता है। अब तुमारे आशयसे तो गणधर महाराज पापका उपदेश देने वाले हुए। इसके सिवाय आचारांगसूत्रमें कहा है:—साध्वी नदीमें गिर गई हो, तो साधु खुद नदीमें गिर करके उसको निकाले, तो इसमें बहुत लाभ कहा है।

कई साधुओंने इस तरह निकाली हैं, निकालते हैं तथा निकालेंगे । ऐसा करनेमें मुनियोंने असंख्य अप्काय हणे हैं, हणते हैं तथा हणेंगे ऐसा उपदेश तीर्थंकर–गणधरोंने किया है, तो तुम्हारे हिसाबसे **'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'** का तथा सुयगडांगसूत्रका पाठ कहाँ रहा? कदाचित् यह कहा जाय कि–साध्वीके निकालनेका लाभ, हिंसासे अधिक है, तो बस इसी तरह समझलो कि–जिन पूजादिक दर्शनशुद्धिकी करणीमें हिंसासे लाभ अधिक है । गोचरी गया हुआ साधु, महामेघकी वृष्टि होती हो–वृष्टि शान्त न होती हो तो आती हुई वर्षामें भी अपने स्थानपर आजाय । एसा उपदेश आचारांग, निशीथ तथा कल्पसूत्रमें दिया है। उस पाठके आधारसे कई मुनि आए हैं और आवेंगे । अब उसमें अप्काय बेइन्द्रिय तेरिन्द्रिय जीवोंकी विराधना होती है तो वह पाप तुम्हारे हिसाबसे उन उपदेश देने वालोंके सिर लगना चाहिये । अच्छा और देखिये । तीर्थंकर महाराजने दो अंगुलियोंसे चपटी बजानेमें असंख्य जीवोंकी विराधना कही है, तो सूर्याभदेवने बत्तीस प्रकारके नाटक किये, वही सूर्याभदेव समकितवंत है, इत्यादि बहुत वर्णन किया है, इसके आधारसे वर्तमानमें भी लोग, भगवान्के सामने नाटक करते हैं । भगवान्ने सूर्याभदेवको निषेध नहीं किया । तो तुम्हारे हिसाबसे भगवान्ने हिंसा करवाई एसा ठहरेगा । मुनि चातुर्मास रहे और यदि अप्रीति-अशिवादि कारण हो जाँय, तो चातुर्मासमें भी विहार करे और ऐसे ही कारणसे खुद प्रभु वीरने भी चातुर्मासमें विहार किया है । इस तरहसे ऐसे कारणोंमें वर्तमान समयमें भी

विहार करते हैं । तो इसके दोषके भागी तुम्हारे हिसाबसे उपदेश देनेवाले तीर्थंकर-गणधरादि ही होंगे ।

ऐसे २ कई स्थानोंमें भविष्यके बडे लाभोंके लिय ही प्रभु तथा गणधरोंने आदेश-उपदेश किये हैं । परन्तु महानुभावो ! पूर्वोक्त कारणोंमें स्वरूप हिंसा है । और जहाँ अनुबन्ध हिंसा होती है, वहाँ ही उत्तरकालमें दुःख होता है । दशवैकालिक-सूत्रमें तथा सूयगडांगसूत्रमें अहिंसाधर्मकी प्ररूपणाकी हुई है । वह सर्वथा सबको मान्य है, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको नहीं समझ करके एकान्त पक्षको स्वीकार करनेवाले जैनदर्शनस बहार हैं । क्योंकि मुनिराजोंने, अरिहंत-सिद्ध-साधु-देव तथा आत्माकी साक्षिसे पंचमहाव्रतोंके स्वीकार करनेके समय मन-वचन कायासे, नव प्रकारके जीवोंको हणुं नहीं हणावुं नहीं, तथा हणे उसको अच्छा न जानुं, ऐसे ८१ भंगोंसे 'प्राणातिपातविरमण' व्रत लिया है, तथापि आहार-निहार-विहार व्याख्यान धर्म चर्चा, गुरुभक्ति तथा देवभक्ति वगैरह क्रियाओंमें हिंसा होती है । परन्तु इन कार्योंमें अत्युत्तम निर्जरा होनेसे इसको हिंसा मानी नहीं है । यदि हिंसा मानली जाय, तो ८१ भंगोंमें दूषण आनेसे मुनियोंको हजारों कष्टक्रियाएं करनेपर भी दुर्गतिमें जानेका ही समय आवे ।

प्रश्न-१४ जिनप्रतिमा श्रीजिनसारसी परूपते हो सो बत्तीस सासत्रमें कांहीका हो तो पाठ बतलायें-

उत्तर-जिनप्रतिमा जिनसमान है, तत्संबंधि रायपसेणी सूत्रके १९० पृष्ठमें 'धूवं दाउणं जिणवराणं' ऐसा पाठ है । तथा जीवाभिगम सूत्रकी लिखी हुई प्रति (जो आचार्य महा-

राजके पास है) के १९१ वें पृष्ठमें भी वही पाठ है । इस पाठका मतलब यह है कि-'जिनवरको धूप दे करके' । इसमें मूर्तिको जिनवर कहा, इससेही सिद्ध होता है कि-जिन-प्रतिमा जिन समान है । इसके सिवाय ज्ञातासूत्रके-१२५५ वें पृष्ठमें 'जेणेव जिणघरे' ऐसा पाठ है । यहाँपर भी जिनप्रतिमाके घरको जिनघर कहा है । इत्यादि बातोंसे जिनसमान कहनेमें जरा भी आपत्ति नहीं आती है ।

प्रश्न-१५ आचारंगरे पेला अध्येनरा पेला उद्देशामें केयोके जीवरी हंस्या कियां जनममरणरो मुकावोपरुपे तीणने अहेत अबोधरो कारण केयो तो फेर आप धर्म देवरे वास्ते हंस्या करणेका उपदेश केशे दीराते हो ।

उत्तर-आचारंग के पहिले अध्ययनके पहिले उद्देशेमें तुम्हारे पूछे मुताबिक प्रश्नका पाठ नहीं है । अतएव उत्तरही देनेकी आवश्यकता नहीं है । तथापि तुम्हारे पर दया आनेसे तथा तुम्हारी भूल सुधारनेके लिये, दुसरे उद्देशेका पाठ, जोकि तुम्हारे पूछे हुए प्रश्न संबंधी है, उसको यहाँ दे करके यथार्थ अर्थ दिखलाता हुँ । देखो, वह पाठ पृष्ठ २९ में यह है:—

"इमस्स चेव जीविअस्स परिवंदणमाणण पूअणाण, जाइ-मरण-मोअणाण दुक्खपडिघायहेउं से सयमेय पुढविसत्थं समारंभइ अण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेइ, अण्णेवा पुढविसत्थं समारंभते समणुजाणइ तं से अहिआए तं से अबोहिए"

इसका भावार्थ यह है:-इस जिंदगीके परिवंदन मान तथा पूजाके लिये जाति-मरण और मोचनके लिये तथा दुःखके प्रतिघातके लिये जो स्वयं हिंसा करे, अन्यके पास करावे, तथा करनेवालेको अच्छा जाने, वह कार्य अहित तथा अबोधके लिये होता है।

यह उसका अक्षरार्थ है। इसमें तुम्हारे प्रश्नसे उलटाही प्रतिभास होता है। तुम लिखते हो:-'जीवरी इस्यांकियां जनम-मरणरो मुकावों परूपे तीणेन अहेत अबोधरो कारण केयो' यह बात तो स्वप्नमें भी नहीं है। महानुभाव! सूत्रोंके असल-वास्तविक अर्थ जानने चाहते हो, तो व्याकरणादिका अभ्यास करो। पश्चात् सूत्रोंके अर्थ समझनेका दावा करो। पूर्वोक्त पाठमें अपने स्वार्थके लिये हिंसा करने वालेको, हिंसा अबोध तथा अहितके लिये कही है। परिवंदन याने कोई वांदे नहीं, तब क्रोध करके अन्यको पीडा करे। वैसेही मान तथा पूजामें भी समझना। इस तरह जाति-जन्म उत्तम मिले, वैसे आशयसे कुदेवोंको वंदणा करे, जलदी मृत्यु न हो, ऐसी आशासे अभक्ष्य-मांसादि खानेकी प्रवृत्ति करे। तथा करने वालेकी अनुमोदना करे, उसको अहितके लिये तथा अबोधके लिये कहा है। हम लोग जो उपदेश देते हैं, वह हिंसाके लिये नहीं, परन्तु धर्मदेवकी भक्तिके लिये।

प्रश्न—१६ आचारंगरे चोथा अध्येनरे पेला उदेशामे कयोके धर्म रहे ते सर्व प्राण भूत सत्व जीवको ही मत हणो, अेतीन-कालरा तीर्थंकरांरा वचन हैं तो फेर देवल वगेरे कराणेमे इण ससात्रके खीलाप धर्मकेशे परूपते हो-

इसतरह भूत-भविष्य तथा वर्तमान तीर्थंकर महाराजाओंने हिंसाका निषेध किया, सो बराबर है; किन्तु जिनके निमित्त समस्त जीवोंकी, समस्त प्राणियोंकी हिंसा नहीं करनी, ऐसा वचन नहीं है। तिसपर भी आप लोग ऐसे मनःकल्पित प्रश्न उठाते हैं। इसीसे तुम्हारी बुद्धिका रहस्य झलकता है। यदि तीर्थंकरोंके वचन वैसे मिलें, तो तीर्थंकर महाराज गौतमस्वामीको, देवशर्मा ब्राह्मणको प्रतिबोध करनेके लिये क्यों भेजते? आनन्द श्रावकके पास अवधिज्ञान संबंधी मिच्छामिदुक्कडं देनेको क्यों भेजते? गौतम! मृगालोढियाको देख आवो, ऐसा क्यों कहते? गौतम! मालुयकच्छमें सिंहा अनगार रोता है, उसको समझाकर बुला लाओ, ऐसा क्यों कहते? क्योंकि उपयुक्त कार्योंमें जीवविराधना होनेका संभव है, परन्तु ये आज्ञाएं भगवान्ने धर्मके निमित्त की है। इसके सिवाय गोचरीके लिये भी भगवान् आज्ञा देते हैं, देखिये, उपासक दशांगके पृष्ठ २१का पाठः

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे नयरे उच्चनीअमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरिआए अडित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।

अर्थात्—हे भगवन्! आपसे अनुज्ञात हुआ मैं, बेलेके, (दो उपवासके) पारणेके लिये वाणिज्यग्रामनगरमें गोचरी लेनेको जाऊं, ऐसा चाहता हूं। तब भगवान्ने कहाः—हे देवानुप्रिय! विलंब मत करो'।

इत्यादि कई जगह धर्मके निमित्त भगवानने ऐसा कहा है। इसी तरह देवमंदिरादि धर्मकृत्योंके उपदेश देनेमें किसी प्रकारकी हानी नहीं है।

प्रश्न—१७ आचारंगरे चौथे अध्येन दुजे उदेशेकेयोके धर्म हेते सर्व प्राण भूत जिव सत्व हणीयां दोस नहि कवे, तोके वर्तमानमें [illegible] तो फेर और इनके पक्षके [illegible] प्रतिमा पूजनेमें धर्म कैसे [illegible] प्रत्यक्ष जीवहिंसा होती है।

उत्तर—आचारांगके चौथे अध्ययनके दूसरे उद्देशमें जो पाठ है, वहां 'हिंसा करनेमें दोष नहीं है' ऐसे बोलनेवालेके वचन, अनार्यके वचन हैं। तथा 'दया पालनेमें दोष नहीं है' यह वचन, आर्यका है। इस मतलबका जो पाठ, प्रश्न पूछनेवाले महानुभाव दिखलाते हैं। वह पाठ, असलमें ऐसा सूचित नहीं करता है कि—'धर्मके निमित्त हिंसा करे, तथा धर्मके निमित्त, हिंसा करनेवाला दोषवाला है,' उस पाठमें ऐसा भाव बिलकुल नहीं है। देखिये, आचारांगके १३० वें पृष्ठमें वे दोनों पाठ इस तरह हैं:—

"से जहेयं तुब्भे एवमाइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह,—सव्वे पाणा, सव्वे भूआ, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, हंतव्वा, अज्जावेयव्वा, परितावेयव्वा, परिघेतव्वा, उद्दवेतव्वा, एत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो अणारियवयणमेअं."

वयं पुण एवमाइक्खामो; एवं भासामो, एवं

परूवेमो, एवं पएणवेमो, सव्वे पाणा, सव्वे भूआ, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्झावेतव्वा, न परिघेतअव्वा, न परियावेअव्वा, न उद्दवेअव्वा, एत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो आयरियवयणमेअं."

ऊपर जो दोनों पाठ दिये गये हैं, इनमें पहिले पाठमें जैनेतरोंका वचन है, दूसरे पाठमें जैनमुनियोंका वचन है, पहिले पाठमें यदि धर्मका अध्याहार (ऊपरसे धर्म) लिया भी जाय, तो भी वह पाखंडियोंका ही धर्म लेना। परन्तु समकितवंत जीवोंका नहीं। दूसरे पाठमें धर्म लेनेकी आवश्यकता ही नहीं है। इसके सिवाय इसी सूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके २२४ वें पृष्ठमें 'जो आस्त्रव वह परिस्रव' तथा 'जो परिश्रव वह आस्रव' कहा है। परिश्रवकर्म निर्जराका नाम है। समकितवंतका आस्त्रव, निर्जरारूप होता है। अज्ञानीका संवर वह आस्रवरूप होता है। तथा 'जो अनास्रव वे अपरिस्रव' और 'जो अपरिस्रव वे अनास्रव' कहे हैं। अनास्रव व्रतादि अशुभ अध्यवसायके कारणसे होते हैं। अपरिस्रव पापके कारणभूत होते हैं। निर्जराके कारण नहीं होते। जो अपरिस्रव याने पापके कारण हैं, वे अनास्रव याने पापके कारण हैं, वे अनास्रव याने निर्जराभूत होते हैं वीरपरमात्माके शासनके लिये तथा संघके लिये अनेक शुभ हेतुसे होते हुए पाप भी निर्जराके कारण होते हैं। देखिये आचारांगसूत्रके पृष्ठ २२४ में इस तरह पाठ है:—

"जे आसवा ते परिस्सवा, ते परिस्सवा ते आसवा, जे अणासवा ते अपरिस्सवा जे अपरिस्सवा ते अणासवा।"

इस पाठका अर्थ, हम ऊपर ही दे आए हैं।

प्रश्न—१८ आचारंगरै चोथा अध्येनरे दुजा उदेशेमे धर्म-हेते प्राणभूत जीवसत्वं हणीयां दोसकैयै तीके वचन आरजना छै तो फेर आप धर्मरे कारण हंस्या करणेमें दोसे केशो नहीं परूपते हो।

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर सतरहवें प्रश्नके उत्तरमें ही आजाता है। वह पाठ भी सतरहवें प्रश्नमें दे दिया है। धर्मके निमित्त होती हुई करणीमें निर्जराही है। यह बात कई प्रश्नोंके उत्तरमें दिखला दी है। अत एव यहाँ विशेष स्पष्टिकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—१९ आचारंगरे आठमे अध्ययनमें श्रीभगवंत महावीर देव ठंडो आहार गणादीनोंरो नीपजीयो डोलीयो चालीयोने आप ठंडा आहार लेणेमे मनाई परूपते हो, सो कीसी सास्त्रके अनुसार भरजीयो वे तो बतलाइये।

उत्तर—आचारंग सूत्रके आठवें अध्ययनमें भगवान् महावीरदेवने बहुत दिनोंका ठंडा आहार लिया, वैसा पाठ नहीं है। परन्तु प्रथम श्रुतस्कंधके नववें अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेमें इस तरहका पाठ हैः—

अवि सूईयं च सुक्कं वा सीयपिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु वक्कसं पुलागं वा लद्धे पिंडे अलद्धए दविए॥

भावार्थ—दहींसे भींजोया हुआ भक्त (भोजन) तथा सूखे वाल चनें जो कि भूंजे हुए हों, तथा वासी याने ठंडा भक्त

(भोजन) जो प्रातःकालसे तीसरे प्रहर तकका हो, अथवा वासी याने पर्युषित पुराणा उडदका भक्त चिरंतन धान्यका भोजन अथवा बहुत दिनोंको सत्थु (साथवा), गोरस तथा गेहूंका मांड इन्होंमेंसे कोई भी प्राप्त हो, परन्तु भगवान् राग द्वेष रहित होकरके ग्रहण करे।

अब यहाँ तेरापंथी महानुभाव, अपनी पकडी हुई वातको सिद्ध करनेके लिये अनेक प्रकारकी कोशिश करते हैं। परन्तु उन लोगोंको वास्तविक मतलब नहीं प्राप्त होनेसे स्वयं अभक्ष्यी होकर, अन्यको भी अभक्ष्यी करनेके लिये अर्थके अनर्थ करते हैं। भात शब्द जहां जहां आता है, वहाँ वहाँ भोजन अर्थ करनेका है। देखिये आज कलभी पुराणा रिवाज चला आता है, जैसे कोई स्त्री क्षेत्रमें भोजन देनेको जाय, और उससे अगर कोई पूछे कि कहाँ जाती हो? तो वह यह कहेगी कि— मैं भात देनेको जाती हूं। यहांपर चाहे कोई भी चीज लेजाती होगी, परन्तु उसको भात ही कहेगी। उडदका चावल होता है ऐसा किसी जगह जाननेमें नहीं आया। तब जैसे जवका सत्थु (सत्थुआ) होता है, वैसे उडद वगैरहका सत्थु इत्यादि समझ लेना। मालवा देशमें सत्थुका प्रचार बहुत है। और भी नाना प्रकारके सत्थु मिलते हैं। मैं उस देशमें विचरा हूँ, इससे मुझे इस वातका जाति अनुभव है। वहुत दिनोंके सत्थुमें कोई भी सीका दोष नहीं है आचारांगसूत्रमें अनेक प्रकारके चूर्ण सत्थु इत्यादिका वर्णन चला है।

हमें बडा आश्चर्य तो यह होता है कि— आप लोग टीकाको मानते ही नहीं हैं, जिसपर भी जहाँ इनको मतलबकी बात आती है, वहाँ तो फोरन टीकाका आश्रय लेते हो।

का रहस्य भी, इसलिये तुमको नहीं मिल सकता। इसीका अर्थ पर्युषित भक्त करनेसे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होनेवाला नहीं है। क्योंकि–पर्युषित दो प्रकारके होते हैं। भक्ष्य तथा अभक्ष्य। 'पर्युषित' शब्दका अर्थ 'रातका रहा हुवा भक्त' ऐसा होती है। इसमें ऐसा नहीं है कि स्नेह सहित या स्नेह रहित। अतएव भक्ष्य अभक्ष्य दोनोंका ग्रहण होता है। इसमें जो भक्ष्य: [illegible] हो, वैसे अन्नपानादिक [illegible]– साधु लेते हैं। और अभक्ष्य नहीं लेते हैं। सूत्रोंमें ऐसेभी पाठ हैं कि–चलितरस, जिसमें लीलण-फूलण आगई हो तथा रूप-रस-गंध-स्पर्श बदल गये हों, वैसे आहारको नहीं लेना। महानु-भाव! अफसोस तो आप लोगोंको शक्ति इसका ज्ञान ही नहीं है। क्योंकि लीलण-फूलण, आंखोंसे [illegible] है, [illegible] लीलण-फूलण तुम्हारेसे जानी नहीं जायगी। अत एव शास्त्रों पर श्रद्धा रख करके सिद्धि सड़कको पकड़ लीजिये। (श्री आचारांगसूत्रके पृष्ठ ६८६ में आहारका अधिकार है। उत्तराध्ययनसूत्रके २४९ वें पृष्ठमें आठवें अध्ययनकी बारहवीं गाथामें भी यही अधिकार है। परन्तु वहाँ किसी स्थानमें बहुत दिनोंके आहारके लेनेका नहीं कहा है। जहाँ 'पुराणा' कहा है वहाँ उड़दका भात कहा है। अतएव जल रहित चूर्ण लेनेमें हानी नहीं है। जिस परमात्माको भूत–भविष्य तथा वर्तमानकालका निर्मल ज्ञान था। ऐसे परमात्माने जिस समय सूक्ष्मदर्शकादि यन्त्रोंके साधन नहीं थे, ऐसे समयमें अपने ज्ञानके द्वारा समस्त वनस्पतिमें, जलमें, तथा कंदमूल वगैरहमें, जीवोत्पत्ति दिखलाई है। यह बात आजकलके साइन्सवेत्ताओंसे, डाक्टरी नियमोंसे तथा आयुर्वेदादिसे सिद्ध होती है। इसलिये आज-कलके जमानेमें साइन्सवेत्ता, डाक्टर लोग तथा वैद्य लोग

भी पर्युषित अन्नके खानेका निषेध किया करते हैं वैष्णव लोग भी स्नेहयुक्त पर्यूषितान्नको त्याग करते हैं। देखिये मनुस्मृतिके पांचवें अध्याय, पृष्ठ १८३ में कहा है।

'यत् किञ्चित् स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम्।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥२४॥
चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥२५॥

भावार्थः—जो लड्डु वगैरह, थोडे स्नेहयुक्त, कठिन, कोमल तथा बिगडे हुए नहीं हैं, वे खाने लायक हैं। तथा होमसे बचा हुआ, जो पर्युषित है, वह भी खाने लायक है।

बहुत कालसे रहा हुआ, स्नेह रहित जो यव, गोधूमसे उत्पन्न हुआहो तथा दूधका विकार जो मावादि (खुआ) होता है, वह ब्राह्मणोंको खाने लायक है।

उपर्युक्त दोनों श्लोकोंमें भक्ष्य-पर्युषित खानेलायक दिखलाया। और उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि-जिसमें जलका भाग न हो, वह खाने लायक है। यही बात तत्त्ववेत्ता जैनाचार्य भी कहते हैं। तथापि तेरापंथी लोग मनमाने अर्थ करके भगवान्की वाणीको सदोष बनाते हैं।

परन्तु महानुभावो! जमाना दूसरी तरहका है। इस समयमें तुम्हारे मनःकल्पित अर्थ, विद्वानोंके आगे चलने वाले नहीं हैं। 'पर्युषितान्नं त्यजेत्' इत्यादि वाक्य जैन तथा जैनेतर शास्त्रोंमें स्पष्ट दीख पडते हैं। रात्रीका रहा हुआ जलवाला पदार्थ-

रोटी, चावल, खिचडी, शाक वगैरह अभक्ष्य समझने चाहियें। जिसमें जलका भाग रहा नहीं है, ऐसे पदार्थ, दिखलाए हुए कालानुसार भगवान्‌ने भक्ष्य कहे हैं। और इसी तरह हम लोक निंदनीय सजीव वासी चीजें लेते भी नहीं हैं। आप लोक भी वैसा ही करेंगे तो भगवान्‌की आज्ञाके आराधक होकर आत्मश्रेय करनेके लिये भाग्यशाली होंगे।

प्रश्न-२० पेला छेला जीनेस्वर देवांरा सादांरे सर्व सपेदवर्णरा कपडा आया है और आप पीला कपडा पेनते हो और रंगते हो सो कीस शास्त्रका रहसे।

उत्तर-पहिले तथा अन्तिम तीर्थंकर महाराजका कल्प अचेलक है। जीर्ण-तुच्छ वस्त्रके परिधान होनेसे अचेलक माना है। तिसपर भी तुम्हारे [तेरापंथी] साधु नये-स्वच्छ तथा रेशमीकपडे पहनते हुए देखनेमें आते हैं, और उनको अचेलक कहते हो, इसका क्या कारण? कारण विशेषमें कपडेको रंग देनेकी आज्ञा हमारे माने हुए सूत्रोंमे मौजूद है। इससे हम लोग रँगा हुआ कपडा रखते हैं, उसमें न दोष है, न आज्ञाका भंग है। 'न धोना न रंगना' यह जो कहा है, वह सफाई या शौकके आशयसे कहा है। विशेष लाभके लिये तो खास आज्ञा दी हुई है।

प्रसंगानुरोध यह भी कह देना समुचित समझा जाता है कि-पक्षपातको छोड करके व्यवहारिक रीतिसे देखा जाय तो यतना पूर्वक परिमित जलसे वस्त्रप्रक्षालनमें फायदा ही है। पूर्व ऋषि-मुनिराजोंका संघयण तथा पुण्य प्रकृति और ही प्रकारकी थी, जिसके कारण दुर्गंधी तथा यूकादि नहीं पडते

थे। आजकल छेवट्ठा संघयण होनेसे मलीन वस्त्रोंमें दुर्गंधी हो जाती है तथा यूकाएं [जूएं] बहुत पडती हैं। आजकल तुम्हारे (तेरापंथियोंके) अनेकों साधु, कपडोंमेंसे जूएं निकालते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उन जूओंको पैरोंमे बांध रखते हैं। जिससे विशेष दोषका कारण होता हैं। वे जूएं, कई गृहस्थोंके घरमें पडती हैं, बहुतसी रास्तेमें गिरती हैं, तथा उपाश्रयमें तो गिरती ही रहती हैं। जू तीन इन्द्रियवाला जीव है, तो ऐसे तीन-इन्द्रिय जीवोंकी इतनी विराधना न करके, फासुजल उपलब्ध हो; उससे यतना पूर्वक कपडे साफ किये जाँय, तो कितना दोष या लाभ होता है? इस बातका विचार करनेमें आवे, तो एकान्तवादको छोड करके, स्याद्वादकी सीधी सडक प्राप्त कर सकते हो। इतनाही प्रसंगसे कह करके अब मैं मूल बातपर आता हूँ।

कपडे रंगनेका कारण; जो यति शिथिल हुए थे, उनसे भेद दिखलानेका ही है। और वह भी शास्त्रयुक्त ही है। न कि मनःकल्पित। देखो, आप लोग (तेरापंथी) स्थानकवासियोंसे अलग हुए, तब स्थानकवासियोंसे विलक्षण मुहपत्ती बांधनी शुरुकी। और वह भी मनःकल्पित, नकि शास्त्र प्रमाणसे। तिसपर भी झूठेको झूठा समझते नहीं हो। और जिन्होने सकारण, सशास्त्र आचार्योंकी सम्मतिसे कपडे रंगनेका कार्य किया है, उसमें दोष देखते हो। यही तुम्हारा जाति स्वभाव दिखाई दे रहा है।

प्रश्न—२१ श्रीजिनेश्वर देवने दशवैकालिकका सातमा अध्येन गाथा ४७ मी मे कयोंके साधु होकर असंयतीको आव-जाव उभोरं बेस सुकांम कर इत्यादिक छ बोल केणा नहीं

तो फेर समेगीजी साधुजी ग्रहस्ती पर बोज कीस शास्त्रकी रूसे देते है:

उत्तर—श्रीदशवैकालिकसूत्रके सातवें अध्ययनकी ४७ वीं गाथामें जो बात कही है, वह सर्वथा मान्य है, फिर चाहे तेरापंथी हो, स्थानकवासी हो या संवेगीसाधु हो। जो साधु, गृहस्थके शिरपर बोझा देता है, वह साधुकी क्रियामें दोष लगाता है। संवेगी साधु, अपने उपकरण गृहस्थके शिर-पर देते नहीं है। और कदाचित् कोई शिथिल साधु देता हो, तो इससे सबके शिरपर दोष लगाना, द्वेषका ही कारण है। देखिये, जो रुपया जितना घिसा हुआ होता है, उसका उतना ही बटाव लगता है। परन्तु वह रुपया सर्वथा तांबेका नहीं गिना जाता है। इसी तरह जिसमें जितनी न्यूनता होती है, उसमें उतनी ही न्यूनता गिनी जाती है कंचन कामिनीका सेवन करनेवाला साधु भावसे विमुख होता है। महानुभाव! आप लोगोंने संवेगी साधुका नाम ले करके निंदाका कार्य किया है। इस लिये पापका पश्चात्ताप करना। स्थूलदृष्टिसे न देख करके, सूक्ष्मदृष्टिसे देखोगे तो, तुम्हें मालूम होगा कि—तुम्हारे साधुओंकी उत्कृष्टता सम्हालनेके लिये कैसे २ प्रपंचोको उठाते हो? बस, यही तुम्हारे गुरुओंकी शिक्षाका फल है।

प्रश्न—२२ सूर्याभदेवता जिन प्रतिमा मोक्षने अर्थ पूजी, आप केते हो, ओर रायपसेणीका पाठ बतलाते हो. सोइणरो उत्तर अवलतो ओहेके देवतांरा केण.सू पूजी हे ओर भवनी परंपराने अर्थे पूजी, दूसरो बतीसवानाभी पूजीया है, हरेक देवता भीमाणरो अदपती हुवे तीको उपजतां वेळा पूजीये।

करे है जीणसू सूर्याव देवता वी पूजी परंपरा रीते, ओर आप फुरमाते होके निसेसाए सवद्नो अर्थ मोक्ष है सो इणरो उत्तर ओहेके इणीज मुताबीक पाठ भगवती सूत्रमें सतक दूजे उद्देशे पेले ल्तायगांयसू धन बारे काडीयो, जठे ‘ नीसेसाए अणुगामी-यताए भविसई ’ पाठ आयो छै, सो ईण जगा कांई मोक्ष हुवो दोनु जगा नीसेसाए अणुगामीयताए भविसई, एक सीरीका पाठ छै, इण न्याय मतमा पूजी जीणमे परभोरो मोक्ष नथी.

उत्तर— ‘देवताके कहनेसे पूजा की उसमें लाभ नहीं है ” ऐसे तुम्हारे कहनेसे, यह मालूम होता कि–आप लोगोंका यह मानना है कि–‘दूसरेके कहनेसे, कोई मनुष्य कुछ कार्य करे उसको लाभ या नुकसान कुछ नहीं होता ’ । परन्तु यदि ऐसा मानोगे तो दूसरेके कहनेसे कोई संसार छोडे, दान दे, भक्ति करे, विनय करे उसको लाभ नहीं होना चाहिये । दूसरेके कहनेसे हिंसादि कार्य करे, तो उसको नुकसान नहीं होना चाहिये । परन्तु नहीं, यह बात आप लोग भी स्वीकार नहीं कर सकते । तो भला फिर, यह विचारनेकी बात है कि देवताके कहनेसे पूजाकी है, तो कोई खराब कार्य तो नहीं किया है । उत्पन्न होनेके बाद सूर्याभदेवने स्वयं यह विचार किया कि–हमें पूर्व–पश्चात्–कल्याणकारी–हितकारी–सुखकारी–भवान्तरमें भी उपकारी–मुक्त्यर्थ क्या कार्य है ? उस समयमें देवताओंने आकरके कहा है । देखिये, इस विषयका पाठः—

“ तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभेदेवे अहुणोववण्णमेत्ते चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तिए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहाः—आहारपज्जत्तीए,

सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए, आणपाणुपज्जत्तीए, भासामणपज्जत्तीए, तएणं तस्स सूरियाभस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जतिभावं गयस्स समाणस्स, इमेआरूवे अज्जत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए, संकप्पे समुप्पज्जित्था, किं मे पुव्विं करणिज्जं, किं मे पच्छा करणिज्जं, किं मे पुव्विं सेयं, किं मे पच्छा-सेयं, किं मे पुव्विंपच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भविस्सइ ? तएणं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणिअपरिसोववण्णगा देवा सूरियाभस्स देवस्स इमेआरूवे, मज्झत्थिअं जाव समुप्पण्णं समभिजाणित्ता जेणेव, सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जयेणं विजयेणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धाययणंसि अट्ठसयं जिनपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं सण्णिखित्तं चिट्ठन्ति सभाए णं सुहम्माए माणवते चेइए खंभे वइरामये गोलवट्टसमुग्गए बहुओ जिणसकहाउ सण्णिखित्ताओ चिट्ठन्ति, ताउ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेहिं च बहूणं वेमाणिआणं देवाणं देवीणं य अच्चणिज्जाओ जाव

वंदणिज्जाओ, नमंसणिज्जाओ, पूअणिज्जाओ, सम्मा-णणिज्जाओ, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवास-णिज्जाओ, तए णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं तं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छा करणिज्जं तं तएयं देवाणुप्पियाणं पुव्विं सेयं, तं एयणं देवाणुप्पियाणं पच्छासेयं, तं एयणं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पच्छा वि हिआए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामिअ-त्ताए भविस्सइ। पृष्ठ १७१ से।

भावार्थः—जिस समय सूर्याभदेव सूर्याभविमानमें उत्पन्न हुआ, उस समय उसको ऐसा विचार हुआ कि-मेरा पूर्व हित-पश्चात् हित तथा पूर्वपश्चात् हित क्या है? इस प्रकार विचार करते हुए सूर्याभदेवको जान करके, उसके पास उसके सामानिक सभाके देवोंने आकरके सविनय इस प्रकार कहाः—

'हे देवानुप्रिय! सूर्याभविमानमें सिद्धायतनमें जिनोत्सेध प्रमाणमात्र १०८ जिन प्रतिमाएं हैं। तथा सुधर्मासभामें मानवत चैत्य-स्तंभमें वज्रमय गोळडब्बेमें जिनके अस्थि (दाढा वगैरह) हैं, वे आपसे तथा दूसरे अनेक देव-देवियोंसे अर्चनीय, वंदनीय, नमस्यनीय, पूजनीय, सम्माननीय यावत् कल्याण-मंगल देव चैत्यकी तरह पर्युपासनीय हैं। तथा वे ही प्रतिमाएं एवं दाढाएं आपको परंपरासे पूर्वहितके लिये, पश्चात् हितके लिये, सुखके लिये, क्षमाके लिये, मोक्षके लिये होंगी।'

उपर्युक्त पाठमें प्रत्यक्ष जिन प्रतिमा तथा दाढा (भगवान्‌के अस्थि वगैरह) अर्चनीय-पूजनीय-वंदनीय कहीं हैं। परन्तु

दूसरी वस्तु दिखलाई नहीं है। इसके सिवाय आप लोग भवकी परंपराका अर्थ करते हैं, तो क्या पूजा करनेसे भवकी परंपरा बढ़ती है, ऐसा कहना चाहते हो ?। या भवकी परंपरामें हितकर कहना चाहते हो ?। यदि भवकी परंपरा वढे, ऐसा अर्थ करोगे, तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि-सूर्याभदेवने प्रभु-की पूजा तथा नाटक वगैरह किये, तिसपर भी एकावतारी महाविदेह क्षेत्रमें 'दृढ प्रतिज्ञ' नाम धारण करके चारित्र लेकर केवली होगा। अब दिखलाइये, कहाँ रही भवकी परंपराका वढना ?। 'परित्तसंसारी' वगैरह विशेषणोंके होनेके भवकी परंपराका वढना बिलकुल असंभव है।

अव जिनपूजा, भवपरंपरामें हितकर है, ऐसा कहोगे, तो वस, झगडा समाप्त हुआ। आप लोग भी सूर्याभदेवकी तरह जिनपूजा रोचक हो जाओ।

अच्छा अब दूसरी बात देखिये। जैसे और वस्तुएं पूजी, वैसे जिनप्रतिमा भी पूजी, ऐसाभी तुम्हारा कथन ठीक नहीं है। क्योंकि-जिनपूजाकी तरह दूसरी वस्तुओंकी पूजाके समय 'आलोए पणामं करेइ' ऐसा कहा नहीं है। तथा जिनप्रतिमाकी तरह 'नमुत्थुणं' वगैरह कहा नहीं है। एवं हितकारी-सुखकारी-क्षेमकारी-कल्याणकारी वगैरह शब्द भी नहीं कहे हैं। तिसपर भी ३१ वस्तुओंकी पूजा तथा जिनेश्वरकी पूजाको एक समान गिनते हो इससे उत्सूत्रभाषीपनेका दोष तुम्हारे सिरपर लगता है कि नहीं, इस वातका विचार करो।

इसके सिवाय और भी देखो, भगवतीसूत्रके १० वें शतकके छठे उद्देशेमें पत्र ८७६ में कहा है कि-भगवान्‌की दाढा वगैरहकी आशातना देवता लोग नहीं करते हैं। जब दाढाकी

ही आशातना नहीं करते हैं, तो फिर प्रतिमाके लिये तो कहना ही क्या? देखिये, वह पाठ यह है:—

"पभू णं भंते! चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचाएरायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए? णो इणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ णो पभू चमरे असुरिंदे असुरराया चामरचंचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए? अज्जो! चमरस्सणं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचाएरायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठंति, जाओणं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो अण्णेसिं च बहूणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ णमंस पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं णिज्जाओ पज्जुवासणिज्जाओ भवंति, तेसिं पणिहाणे णो पभू से तेणट्ठेणं अज्जो! एवं वुच्चइ णो पभू चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए जाव विहरित्तए। पभू णं अज्जो! चमरे असुरिंदे असु-

रराया चमरचंचाए रायहाणीए सन्नाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठी सामाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए जाव अन्नेहिं च बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय जाव भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारिद्धीए णो चेवणं मेहुणवत्तियं।"

भावार्थः–हे भगवन्! चमरचंचा राजधानीमें चमरसिंहासनमें असुरेन्द्र असुरराजा चमर, दिव्य भोग भोगनेको समर्थ है?

हे गौतम! समर्थ नहीं है।

हे भगवन्! क्यों समर्थ नहीं है?।

हे गौतम! चमरचंचा राजधानीमें सुधर्मा सभामें मानवत चैत्यस्तंभमें वज्रमय डब्बेमें जिनके सक्थी बहुत हैं। जो कि चंदनसे पूज्य हैं। प्रणामसे नमन करने योग्य हैं। वस्त्रादिसे सत्कार करने योग्य हैं। प्रतिपत्तिसे संमान्य हैं। अतएव उन पवित्र जिन सक्थियोंकी आशातना न हो, इस लिये वह चमरेन्द्र मैथुनादि भोगोंको भोगता नहीं है। परन्तु अपने परिवारके साथ चमरेन्द्र वहाँ विचर सकता है।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि–जब जिनदाढाओंकी आशातनाके लिये निषेध किया है, तो फिर जिन प्रतिमाका तो कहना ही क्या?।

अच्छा, अब तेरापंथी महानुभाव भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके पहिले उद्देशेके 'हियाए सुहाए खमाए' इत्यादि

पाठको ले करके यह सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि-'सूर्याभदेवने जिन प्रतिमाकी पूजाके निमित्त जो 'हियाए' इत्यादि शब्द कहे हैं, वे संसारके लिये हैं।' परन्तु यह ठीक नहीं है। भगवतीसूत्रके दूसरे शतकके दूसरे उद्देशेमें स्कंदक तापसने, महावीर स्वामीके पास एक दृष्टान्तको ले करके बातकी कि-'जैसे गाथापतिने जलते हुए अग्निमे एक बहुमूल्य पात्र (भांड) निकाला, तब वह विचार करता है कि-यह मुझे हितकारी-सुखकारी-कल्याणकारी तथा आगामी भवमें काम लगेगा। उसी तरह हे प्रभो! मेरी आत्मा एक भांड याने पात्र रूप है। तो जरा-मरणादि जलते हुए लोकसे निस्तारित हुई मेरी आत्मा, हितकारी-सुखकारी-कल्याणकारी तथा परभवमें मुझको लाभकारी होगी।'

इत्यादि पाठसे गाथापतिके स्थानपर खुद हुआ। भांडके स्थानपर अपनी आत्माको स्थापित किया। तथा धनके स्थानपर ज्ञान-दर्शन-चारित्रको स्थापन किया। ऐसे उपमा उपमेयभाव करके उपनय उतारा है। वहाँ स्कंदकजीने आत्माको तारनेमें 'हियाए सुहाए' इत्यादि शब्द कहे हैं। उसी तरह गाथापतिके पाठमें भी 'हिआए सुहाए' इत्यादि शब्द कहे हैं। उन दोनों जगहों पर 'निःश्रेयस' का अर्थ मोक्ष है। परन्तु गाथापतिके पक्षमें 'निःश्रेयस' शब्दका अर्थ द्रव्यमोक्ष करना और स्कन्दकजीके पक्षमें भावमोक्ष अर्थ करना। गाथापति उस भांडके देनेसे छूट गया तथा स्कंदकजी कर्मके देनेसे छूट गये।

वैसे ही शब्द सूर्याभदेवके भी हैं। इसके सिवाय जहाँ सूर्याभदेव, महावीर स्वामीको वंदणा करनेको गये; वहाँ भी

'हियाए' इत्यादि पाठ कहा है। उववाई सूत्रके पृष्ठ १६ में, ठाणांगजीके पृष्ठ १९४ में इत्यादि कई जगहों पर 'हियाए' इत्यादि पाठ शुभ कार्योंमें आया हुआ है। अत एव प्रतिमा पूजा भवान्तरमें सुखकारी है, यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है।

प्रतिमा पूजन करके सीधा मोक्ष नहीं होता है, ऐसा जो तुम (तेरापंथी) कहते हो, इसीसे ही प्रतिमाकी पूजाका स्वीकार हो जाता है। अब रही सीधे मोक्षकी बात। सो तो ठीक है। सीधा मोक्ष नहीं होता है, यह तो हम भी स्वीकार करते हैं। क्योंकि, देखिये, श्रावक पांचवें गुणस्थानकमें होनेसे बारहवें देवलोक पर्यन्त ही जा सकते हैं। और प्रतिमाकी द्रव्यपूजा करनेका अधिकार श्रावकोंका ही है। अत एव सीधा मोक्षका होना कहां रहा? हम पूछते हैं कि—पांचवें गुणस्थानकवाला श्रावक सामायिक-पौषध वगैरह करता है, तो इससे उसका क्या सीधा मोक्ष तुम मानते हो? जब उसका मोक्ष नहीं हो सकता है, तो फिर प्रतिमाकी पूजा करने वालेका क्योंकर हो सकता है?। इसमें कारण यह है कि—अकेले विनयसे, अकेले विवेकसे, अकेले ज्ञानसे, अकेले दर्शनसे तथा अकेले चारित्रने भी सीधा मोक्ष नहीं हो सकता। परन्तु जिस निमित्तको ले करके सम्यक्त्व दृढ हुआ हो, वह मुक्तिका कारण गिना जाता है। फिर भले ही परंपरासे मुक्ति क्यों न हो?। आर्द्रकुमारको प्रतिमाके दर्शनसे समकित हुआ, ऐसा सूयगडांगसूत्रकी निर्युक्तिमें स्पष्ट पाठ है। निर्युक्तिके माननेका प्रमाण नंदीसूत्र तथा भगवतीसूत्रके पचीसवें शतकमें है, जिसका पाठ प्रश्नोंके उपक्रममें ही देदिया है।

जिससे परंपरासे मुक्ति हो, ऐसे विनय-विवेक-ज्ञान दर्शन-चारित्र इत्यादि भी प्रमाण ही है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र इन तीनोंके संयोगमें साक्षात् मुक्ति होती है। दर्शनकी निर्मलता भगवान्की आज्ञामें है। भगवान्ने प्रतिदिन प्रभुप्रतिमाके दर्शन नहीं करनेवाले साधु तथा श्रावकोंको प्रायश्चित दिखलाया है। देखिये, नंदिसूत्रमें जिस महाकल्पसूत्रका नाम है, उसी महाकल्पसूत्रमें इस तरहका पाठ हैः—

"से भयवं तहारूवं समणं वा माहणं वा चेइअघरे गच्छेजा? हंता गोयमा! दिणे दिणे गच्छेजा। से भयवं जत्थ दिणे ण गच्छेजा, तओ किं पायच्छित्तं हवेज्जा? गोयमा! पमायं पडुच्च तहारूवं समणं वा माहणं वा जो जिणघरं न गच्छेज्जा तओ छट्ठं अहवा दुवालसमं पायच्छित्तं हवेज्जा।"

अर्थात्—हे भगवन्! किसी जीवको दुःखित नहीं करनेवाला तथारूप श्रमण जिनमंदिरमें जाय?।

हे गौतम! हमेशां-प्रतिदिन जाय।

हे भगवन्! यदी वह हमेशां न जाय तो इससे, उसको प्रायश्चित्त लगे?

हे गौतम? यदि प्रमादका अवलंबन करके तथारूप श्रमण जिनमंदिरमें प्रतिदिन न जाय तो, उसको छट्ठ (दो उपवास) अथवा द्वादश (पांच उपवास) का प्रायश्चित्त लगे।

पाठक देख सकते हैं कि-उपर्युक्त पाठमें खुद भगवान्ने जिनप्रतिमाके प्रतिदिन दर्शन करनेका कैसा हुकम फरमाया

है ? । जो लोग जिनमूर्तिके दर्शन नहीं करते हैं, वे भगवान्की आज्ञाके विराधक हैं, ऐसा कहनेमें क्या किसी भी प्रकारकी अत्युक्ति कही जा सकती है ?! कदापि नहीं।

प्रश्न—२२ समेगीजी साधुजी महाराज खुद ध्रवपूजा कीउ नही करते, जो ध्रवपूजामें धर्म हो तो साधुको अवस्य करणा चाईयें साधुकू धर्मका काम करणेमें कोई दोस नही है, खास धर्मके वास्ते गर छोडते सो उनको तो हरवर्ग जीन प्रतिमाकी ध्रवपूजा वो भगतीमे रेणा चायें कीउके आप प्रतिमा पूजणेमे धर्म परूपते है।

उत्तर—वडे आश्चर्यकी वात है कि-प्रश्न पूछनेवालोंको यह भी समझमें नहीं आया की-द्रव्यपूजा करनेमें द्रव्यकी जरूरत होती है या नहीं। और जिसमें द्रव्यकी जरूरत रहती है, वह साधु कैसे कर सकता है? फिर चाहे भले धर्मका ही हो। जिस कार्यमें द्रव्यकी आवश्यकता होती है, उस कार्यको साधु नहीं कर सकता। क्योंकि, साधुके पास द्रव्यका अभाव ही रहता है। इसके सिवाय द्रव्यपूजनके करने वालेको स्नानादि क्रिया करनेकी जरूरत भी रहती है। देखिये, भगवती सूत्रमें तुंगिया नगरीके श्रावक स्नान-पूजा करके भगवान्को वंदणा करनेके लिये गये हैं। वहाँ पूजाके समय स्नान क्रियाकी जरूरत पडी है। जब साधुको स्नान करनेका, पुष्पादिको छूनेका अधिकार ही नहीं है, तो फिर कैसे प्रभुकी द्रव्यपूजा कर सकते हैं?। प्रभुकी पूजामें पुष्पादि सचित्त वस्तुओंका उपयोग करना पडता है। देखिये, महाकल्पसूत्रका वह पाठ, जो पहिले प्रश्नके उत्तरमें दे दिया है। व्रतधारी श्रावकोंने प्रभुकी पूजा करते हुए कैसी २ वस्तुएं चढाई हैं? साधुओंका अधिकार वैसी वस्तुओंको

छूनेका ही नहीं है। जिसका जैसा अधिकार होता है, इससे वैसी ही क्रियाएं होती हैं।

एक स्वाभाविक नियमको देखिये. जिसको जिस जगह फोडा होता है, वह उसी जगह पाटा बांधेगा। निरोग शरीर पर पाटा बांधनेकी आवश्यकता नहीं रहती। वैसे मुनियोंको छकायका कूटा बाकी नहीं है, इस लिये उनको द्रव्यपूजन करनेकी भी जरूरत नहीं।

'धर्मके करनेमें कोई दोष नहीं है, खास धर्मके लिये घर छोडते हो' यह तुम्हारा (तेरापंथियोंका) कथन तुम्हारी अज्ञानताका ही परिचय दे रहा है।

प्रतिमा पूजनेमें धर्म हम ही नहीं कहते हैं, समस्त तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, उपाध्याय तथा मुनिप्रवर कहते हैं। जब ऐसा ही है, तब तो तुम्हारे हिसाबसे उन सभीको, द्रव्यपूजा करनी कार्यरूप हो जायगी, परन्तु नहीं. वैसा नहीं है। ऊपर कहे मुताबिक जितने पदस्थ अथवा मुनिपद धारक हैं, उनको द्रव्यपूजाका अधिकार नहीं है। भावपूजा याने जो भक्ति है, वही करनेका अधिकार है। देखिये, प्रश्नव्याकरणके पृष्ठ ४१५ में इस तरहका पाठ है:—

"अह केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं? जे से उवहिभत्तपाणादाणसंगहणकुसले अच्चंतबालदुब्बलगिलाणवुड्ढमासखमणे पवत्तायारियउवज्झाए सेहे साहम्मिए तवस्सी कुलगणसंघचेइअट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सिअं दसविय बहुविहं करेइ।"

उपर्युक्त पाठमें 'जिन प्रतिमाकी भक्ति करता हुआ साधु निर्जराको करे' ऐसा कहा है। इस नियमानुसार हम लोग

यथाशक्ति प्रभुभक्तिका लाभ लेते हैं। जीवाभिगममें विजयदेवने प्रभुप्रतिमाके आगे १०८ काव्य करके प्रभुकी स्तुति की है। देखिये, वह पाठ पृष्ठ १९१ वें में इस तरह है:—

"जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महाचित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ संथुणइत्ता सत्तट्ठपयाइं उसरइ उसरइत्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेइत्ता दाहिणजाणुं धरणितलंसि निहाडेइ"

उपर्युक्त पाठमें, 'पहिले काव्य कह करके सात-आठ कदम जिनप्रतिमासे पीछे हठ करके, डावा गोडा ऊंचा करके तथा जीमणा धरणीतलमें स्थापन करके बहुमानके साथ शक्रस्तव कह करके वंदणा करे,' इत्यादि कहा है।

उसी तरह वर्तमानकालमें भी मुनिराज, मधुर-सुंदर-नये नये वृत्तवाले काव्य प्रभुके सामने कह करके चैत्यवंदन करते हैं इस लिये याद रखना चाहिये कि-साधुओंका अधिकार भक्ति करनेका है। द्रव्यपूजा करनेका नहीं।

इसके सिवाय और भी बहुतसे ऐसे कार्य होते हैं कि-जो धर्मके होनेपर भी साधु करते नहीं हैं। क्योंकि-वह उनका अधिकार नहीं है।

देखिये, साधु सूत्रानुसार दानधर्मका उपदेश देते हैं। किन्तु दान देते नहीं हैं। क्योंकि-उस प्रकारके अशनादिकी सामग्री उनके पास नहीं होती। ढाई द्वीपमें जितने मुनिवर हैं, वे समस्त वंदनीय हैं। तथापि शिष्योंको तथा लघु गुरुभाईओंको एवं दूसरे छोटे साधुओंको वंदणा करते नहीं है। क्योंकि-

व्यवहारसे वैसा अधिकार नहीं है । जहाँ जहाँ जैसा अधिकार होता है, वहाँ वहाँ वैसा ही कार्य करना उचित है ।

प्रिय पाठक ! तेरापंथियोंके पूछे हुए तेइस प्रश्नोंके उत्तर समाप्त हुए । उनके पूछे हुए प्रश्न कैसे अशुद्ध तथा निर्माल्य थे, पाठक अच्छी तरह देख गये हैं । अस्तु ! जब हम तेरापंथियोंके अभिनिवेशकी तरफ ख्याल करते हैं, तब हमें यही विश्वास होता है—कि तइना परिश्रम करनेपर भी उन लोगोंको कुछ भी लाभ होनेवाला नहीं है । और यदि हो जाय तो बडे सौभाग्यकी बात है । खैर, उनको लाभ हो चाहे न हो, परन्तु इतर लोगोंको इससे अवश्य लाभ पहुँचेगा, यह हमें दृढ विश्वास है । बस, इसीमें हम अपने परिश्रमकी सफलता मानते हैं ।

पालीके तेरापंथीयोंकी एक और करतूत ।

संसारमें ऐसी कहावत है कि-'सो मूर्खोंसे एक विद्वान् अच्छा, जो तत्त्वकी बात या युक्तिको समझ भी तो ले।' हमारे पवित्र जैन धर्मको कलंकित करनेवाले तेरापंथी शास्त्रकी गंधको भी तो जानते ही नहीं हैं, और जहाँ तहाँ विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करनेको या प्रश्नोत्तर करनेको खडे हो जाते हैं। अस्तु, लेकिन तारीफ तो इस बातकी है कि-इन लोगोंको चाहे कितनेही शास्त्रोंके पाठोंसे तथा युक्तियोंसे समझावें, परन्तु ये अपने पकडे हुए पूँछको कभी छोडते ही नहीं है। ऐसे आदमियोंसे शास्त्रार्थ करना या वादानुवादमें उतरना क्या है, मानो अपने अमूल्य समयपर छुरी फिराना है। झूठ बोलना असत्य बातोंको प्रकट करना-समझने पर भी अपनी बातको नहीं छोडना और झूठा शोर मचाना, इत्यादि बातोंकी, इन लोगोंने अपने गुरुओंसे ऐसी उमदा तालीम पाई हुइ है, कि-मानो इन बातोंके ये प्रोफेसर ही बन बैठे हैं।

अभी इन्हीं दिनोंमें-पाली मारवाडमें हमारे परमपूज्य-प्रातःस्मरणीय आचार्य महाराजके साथ, वहाँके तेरापंथियोंने जो चर्चा की थी, उसका सारा वृतान्त इस पुस्तकमें पाठक पढ चुके हैं। और इन लोगोंने जो तेईस प्रश्नोंका एक असंबद्ध चिट्ठा लिख करके दियाथा, उनके उत्तर भी इसमें अच्छी तरह दे दिये गये हैं। जिस समय, उन्होंने प्रश्न दिये थे, उस समय सबके समक्ष यह निश्चय हुआ था कि-इन प्रश्नोंके उत्तर अखबारके द्वारा दिये जायेंगे। इस नियमानुसार उन प्रश्नोंके उत्तर भावनगरके 'जैन शासन' नामक अखबारमें छपवाए

गये। इनके प्रश्नोंके उत्तर 'जैन शासन' में समाप्त होनेही नहीं पाये, कि इतनेमें इन तेरापंथियोंने एक आठ-नव पन्नेका ट्रेक्ट निकाल डाला। यह ट्रेक्ट क्या निकाला? मानो इन्होंने अपने आपसे अपनी मूर्खताकी मूर्ति खडी कर दी। जिनको भाषा लिखनेकी भी तमीज नहीं है, वे क्या समझ करके ऐसे ट्रेक्ट निकालते होंगे? अस्तु, भाषाकी ओर ख्याल न करके विषयपर दृष्टिपात करते हैं, तो इसमें मृषावादसे भरी हुइ बातोंकाही उल्लेख देखनेमें आता है। जो बातें चर्चाके समयमें हुई थीं, उनको उडा करके नई नई बातें दिखलानेका जादू-प्रयोग खूब ही किया गया है। लेकिन इन लोगोंको स्मरणमें रखना चाहिये कि-तुम्हारी ऐसी झूठी बातोंसे लोग फँसनेवाले नहीं हैं। पचासों आदमियोंके सामने जो बातें हुई थीं, उनको उडादेनेसे तुम्हारी अज्ञानताकी पूँजीही दिखाई देती है। अब आप लोग चाहे जितनी चलाकी करो, कुछ चलनेवाली नहीं है। तुम्हारे इस ८ प्रश्नोंके ट्रेक्टमें, तेईस प्रश्न भाषासुधार करके प्रकाशित किये हैं। परन्तु हमारे पास तुम्हारा वह लंबा-चौडा चिट्ठा मौजूद है, जिसमें मारवाडी, हिन्दी, गुजराती, फारसी, उर्दु वगैरह भाषाओंकी खिचडी बना करके प्रश्न पूछे हैं। इसके सिवाय इस ट्रेक्टमें, आचार्य महाराजका पालीमें धूमधामसे सामेला हुआ, आचार्य महाराजने लेक्चर दिये, इत्यादि बातोंमें जो तुम्हारे हृदयकी ज्वाला प्रकटकी है, वह भी तुम्हारे द्वेष देवताके ही दर्शन कराती है। परमात्माका सामेला (सामैया) किस प्रकारसे होता था? उस समयके लोग शासनकी प्रभावनाके लिये कैसे २ कार्य करते थे? उन सब बातोंको शास्त्रमें देखो

तो फिर तुम्हें मालूम हो जायगा, कि-इस कालकी अपेक्षा धुरंधर आचार्योंका-पवित्र मुनिराजोंका सामेला (सामैया) गामके मुताबिक हो तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? क्या मुनिराजोंको खोजेके मुडदेकी तरह शहेरमें लाना अच्छा समझते हो? यदि ऐसाही है, तो यह बात आप लोगोंको ही मुबारक रहे। खुशीसे तुम्हारे साधुओंको उस मुताबिक ले जाया करो।

इन लोगोंके इस ट्रेक्टसे विदित होता है कि-यह ट्रेक्ट सिर्फ सच्ची बातको उडा देनेके लिये ही निकाला है। अगर ऐसा न होता तो वे इसमें इतनी असत्यपूर्ण बातें कभी न लिखते। और चर्चाके विषयमें उन्होंने जो वृत्तान्त लिखा हैं वह असत्यतासे भरा हुआ है। भवका डर रखनेवाला पुरुष कभी ऐसी ऊटपटांग झूठी बातें प्रकाशित नहीं कर सकता।

शिरेमल श्रावकके साथमें आचार्यमहाराजके वार्तालाप होनेकी बात ८-९ पृष्ठमें लिखी है, वह भी ऐसी ही झूठी है। शिरेमलसे ऐसी बात कभी नहीं हुई है। इस बातकी साक्षी-गवाही पंडित परमानन्दजी वगैरह वेही महानुभाव दे सकते हैं, जो उस चर्चाके समय हरसमय उपस्थित रहा करते थे।

पालीके तेरापंथीभाई, अपने ट्रेक्टके १६ वें पृष्ठमें लिखते हैं कि-" उपरोक्त तेवीस प्रश्न **मारवाडी भाषा मिश्रित** लिखकर....दिये।" हम पूछते हैं कि-यह मारवाडी भाषाकी **मिश्री** डाली किसमें? प्रधान एक भाषा भी तो होनी चाहिये। तुम्हारे प्रश्नोंमें खास एक भाषा तो कोई है नहीं। छप्पनमसालेकी दाल जैसे बनाते, वैसे ही बिचारे तेईस प्रश्नोंकी

मिट्टी खराब की है। अच्छा, यह भी कुछ कह सकते हो कि-मारवाडी भाषाकी मिश्री किस लिये डाली ? ।

आगे चलकर उसी १६ वें पृष्ठमें लिखा गया है कि-
' पालीमें करीब १५ दिनके और ठहरे रहे, कोई विहार नहीं किया, और न प्रश्नोंका उत्तर दिया । '

प्रश्नोंके उत्तर तय्यार करके ' जैन शासन ' में क्रमशः छपवानेके लिये भेज भी दिये थे। क्योंकि अखबारके द्वारा ही जवाबोंके देनेका निश्चय किया था। तिसपर भी, उन लोगोंको यह सूचित किया था कि-" अगर तुम्हें जल्दी जबाब चाहिये तो, एक पब्लिक सभा करो, जिसमें पालीके प्रतिष्ठित पंडित तथा राज्यके अमलदार लोग मध्यस्थ बनाए जाँय, और हमारे आचार्यमहाराजश्री तुम्हारे तेईस प्रश्नोंके उत्तर दे दें।" लेकिन इन लोगोंने सभा करनेसे बिलकुल इन्कार किया। इस विषयमें उनके आए हुए रजिस्टर पत्र हमारे पास मौजूद हैं।

अन्तमें इतना ही कहना काफी है कि-इन लोगोंने, अपने ट्रेक्टमें मृषावादकी मात्रासे भरी हुई बातें प्रकाशित की हैं। इस लिये इनके ऊपर किसीको विश्वास नहीं रखना चाहिये। इन लोगोंका यह स्वभाव ही है कि-झूठी २ बातोंको प्रकाशित करके अपने ढाँचेको खडा रखना। परन्तु स्मरणमे रखना चाहिये कि-निर्मूल, निर्मूल ही है। और निर्मूल वस्तु कभी ठहर नहीं सकती। अस्तु, इस विषयको अब यहाँ ही समाप्त किया जाता है। आशा है ये लोग बुद्धिमत्तासे विचार करके तत्त्वकी बातको ग्रहण करेंगे।

तेरापंथियोंसे ७५ प्रश्न.

१ 'तेरापंथी' ऐसा कहनेमें तुम्हारे पासमें शास्त्रीयप्रमाण क्या है ? कदाचित् ऐसी ही कल्पना करोगे कि-तेरह मनुष्य निकले थे, इस लिये 'तेरापंथ' कहते हैं, तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि-तेरहमेंसे सातोंने तो तुम्हारा साथ छोड ही दिया था, तो फिर तुमको 'छपंथी' क्यों न कहा जाय ? ।

२ इतिहाससे तुम्हारे मतको प्राचीन सिद्ध कर सकते हो ? अगर कर सकते हो तो कर दिखलाओ ।

३ 'बत्तीस ही सूत्रमानने, अधिक नहीं,' यह बात कौनसे सूत्रमें लिखी है ? । तथा तुम्हारे माने हुए बत्तीस सूत्रोंमें, दूसरे जिन २ सूत्रोंके नाम आते हैं, उन २ सूत्रोंको क्यों नहीं मानते ? ।

४ 'महावीर स्वामी चूके' ऐसा अपने आपसे कहते हो ? या किसी सूत्रमें भी कहा है ? सूत्रमें कहा हो तो, उस सूत्रके नामके साथ पाठ दिखलाओ ।

५ सालमें दो दफे पाटमहोत्सव करते हो, यह विधि कौनसे सूत्रमें लिखी है ? ।

६ तुम्हारे साधु दो-ढाई हाथका ओघा रखते हैं, यह किस सूत्रके कौनसे पाठके आधारसे रखते हैं ?

७ तुम्हारे पूज्यके पाट-पट्टे साध्वियाँ बिछाती हैं, यह किस जैनसूत्रके आधारसे ? ।

८ तुम्हारे साधु, साध्वियोंके पास गोचरी मँगवाकर आहार करते हैं, यह कौनसे सूत्रके आधारसे ? ।

९ तुम्हारे साधु, हलवाईयोंकी कडाइ वगैरहके धोए हुए, गृहस्थोंके रसोईके वरतणोंके धोए हुए पानीको, जिसमें असंख्य जीव उत्पन्न हुए होते हैं, ोते हैं यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१० तुम्हारे साधु, अनारके दाने वगैरह सचित्त फलोंको खाते हैं यह किस सूत्रके आधारसे ?।

११ तुम्हारे साधु, विहारमें गाँव २ साध्वियोंको साथ रखते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१२ तेरापंथी साधु, गृहस्थोंके बालकोंको विद्या पढानेसे रोकते हैं, इसका क्या कारण है ?।

१३ तुम्हारे साधु, गृहस्थोंको इस प्रकारकी बाधा देते हैं कि–' हमारे सिवाय दूसरे साधुओंको आहार–पानी न देना ' यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१४ तुम्हारे साधु, रात्रीको पानी नहीं रखते हैं, तो फिर कभी वडीनिति (जंगल) जाना पडे, तो अशुद्ध जगहको साफ़ कैसे करते हैं ? अगर कहोगे कि–मूत्रसे साफ करते हैं, तो ऐसा करना किस सूत्रमें कहा है ?।

१५ तुम्हारे साधु, गृहस्थोंका झूठा आहार तथा झूठा पानी ले करके खाते–पीते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१६ तुम्हारे साधु, रात्रीके दस २ बजे तक गृहस्थनियोंको उपदेश देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१७ तुम्हारे साधु स्थानकमें लाई हुई वस्तुको ग्रहण करते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे ?।

१८ खानेकी वस्तुएं रात्रीको रखना, यह साधुके लिये किस सूत्रमें कहा है ?।

१९ दुःखी जीवको, दुःखसे मुक्त नहीं करना, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ?।

२० जीवको मारनेमें एक पाप और छुडानेमें अठारह पाप लगते हैं, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ?।

२१ तुम्हारे किसी साधुकी आँखोंका तेज कम हो जाय, तो वह चश्मा रक्खे या नहीं ? अगर नहीं रक्खेगा, तो जीव-दया कैसे पालेगा ?। चश्मा नहीं रखना, ऐसा किस सूत्रमें कहा है ?।

२२ तुम्हारे साधु, निरन्तर मूँहपर कपडा बांधे रहते हैं, इसका क्या कारण है ? इस तरह मूँह छिपा रखनेकी किस सूत्रमें आज्ञा दी है ?।

२३ मुहपत्तीमें दोरा रखनेका किस सूत्रमें फरमाया है ?।

२४ कुण्टेका गद्दी-तकिया जैसा बना करके, ऐश-आराम करना, यह किस सूत्रमें कहा है ?।

२५ रात्रीके पडे हुए कपडोंकी पडिलेहणा साध्वियोंसे करानी, यह किस सूत्रमें कहा है ?।

२६ साध्वियोंको पडदेके अन्दर लेजा करके आहार करना, यह किस सूत्रमें कहा है ?।

२७ प्रातःकालमें उठ करके, साधुओंने मक्खन तथा मिश्री खाना, यह किस सूत्रका फरमान है ?।

२८ साधु होकरके दिनभर चिकनी सुपारी खाया करना, यह किस सूत्रमें कहा है ?।

२९ पुस्तकादिका बोझा साध्वियोंसे उठवाना, यह किस सूत्रमें कहा है ?।

३० हाथ पैर साध्वियोंसे धुलवाना यह किस सूत्रमें कहा है?।

३१ गृहस्थानियोंके साथ, एकान्तमें बातें करना, यह किस सूत्रकी आज्ञा है?।

३२ तुम्हारे साधु, अपने दरशन करानेकी, गृहस्थोंको बाधा देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे देते हैं?।

३३ तुम्हारे साधु, पोथी पुस्तक रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

३४ तुम्हारे साधु, पात्रको रंग—रोगन लगाकर रंग-बिरंगी बनाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

३५ तुम्हारे साधु, एक माससे अधिक रहते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

३६ महाजन (वनिये) के सिवाय दीक्षा नहीं देना, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

३७ तुम्हारे साधु, दो दो महीने पहिलेसे चौमासा करनेको कह देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे?।

३८ तुम्हारे साधु, दवाई लेकरके उसकी फीस गृहस्थोंसे दिलवा देते हैं, यह किस सूत्रके आधारसे?।

३९. ओसवालोंके सिवाय, और किसीको पूज्य नहीं बनाते हो, यह किसी सूत्रके आधारसे?।

४० तुम्हारे साधु भिक्षाके समयके पहिलेसे ही गली-महल्लोंको सूचना करवा देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

४१ साध्वियोंसे सूत्र वंचवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे?।

४२ साधु होकरके किंवाड खोले या गृहस्थोंसे खुलवावे और उसके अन्दरकी वस्तुएं ग्रहण करे, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४३ तुम्हारे साधु, अंधेरेमें ही (४-५ बजे) गृहस्थनियोंसे वंदणा करवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४४ तुम्हारे साधु, गृहस्थनियोंसे दिनमें भी सेवा करवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४५ तुम्हारे साधु, सूतकवालेके घर जा करके दर्शन देते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४६ तुम्हारे साधु, गृहस्थके घर जा करके व्याख्यान सुनाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे सुनाते हैं ?।

४७ तुम्हारे साधु, एक ही घरसे जी चाहे उतनी रोटियां लेते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

४८ तुम्हारे साधु, एक एक दिनके अन्तरसे, गृहस्थके घरसे आहार लेते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

४९ तुम्हारे पूज्य, अपने कपडे साध्वियोंसे सिलाते हैं, ओघा बनवाते हैं, कपडें धुलवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५० साध्वियोंको बजारमें दो दुकानोंके बीचमें चौमासा-मासकल्प कराते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५१ तुम्हारी साध्विएं पाट-पट्टों पर बैठकर पर्षदाके बीचमें व्याख्यान देती हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५२ तुम्हारे मृतसाधुको १ मुहूर्त अपनी निश्रामें रखते हो, गृहस्थोंसे वंदणा करवाते हो, और वह बड़ी दीक्षावाला

हो तो छोटी दीक्षावाला साधु, उसको वंदणा करता है, यह सब विधि किस सूत्रमें कही है ?।

५३ ' भीखमजी, पांचवें देवलोकके ब्रह्म नामक इन्द्र हुए' ऐसे कहते हो, तो यह बात किस सूत्रमें कही है ?।

५४ तुम्हारे साधु, पुस्तक बनाकरके छपवाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

५५ साधुओंके लिये, सूत्रमोल लेते हो, और साधुओंको देतेहो यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५६ तुम्हारे साधुओंको खानेका सामान ऊंटपर लाद लाद करके लेजाते हो, सामने जाकरके साधुओंको आहार देते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ?।

५७ तुम्हारे साधु आधाकर्मी आहार लेते हैं, क्योंकि जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब नानाप्रकारकी चीजें बनाकर वेहराते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञासे करते हो?।

५८ जिस समय तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब मिश्री-घेवर-लड्डु वगैरह बाँटते हो, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

५९ जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब सगे-संबन्धियोंको जिमाते हो-आरंभ समारंभके कार्य करते हो, इसका दोष तुम्हारे पूज्यको लगता है कि नहीं ? अगर नहीं लगता है तो सूत्रका पाठ दिखलाओ।

६० जब तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेको जाते हो, तब वहीं लडके-लडकियोंको देख करके आपसमें सगाई करते हो, तो इसका दोष तुम्हारे पूज्यको क्यों न लगना चाहिये ?

६१ तुम्हारे साधुओंके मलीन कपडोंमें जब जूएं पडती हैं, तब वे निकाल निकाल करके पैरोंमें पाटे बाँध करके उसमें रखते हैं, तो ऐसा करनेको किस सूत्रमें कहा है ? ।

६२ तुम्हारे साधु उष्णकालमें कोरी हांडीमें पानी ठंडा करके पीते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे ? ।

६३ जिन सीमंधरस्वामीके सामने आप लोग क्रियां करते हो, उन सीमंधरस्वामिका नाम, तुम्हारे माने हुए बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें है ? ।

६४ तुम्हारे साधु, स्याही-कलम-कागज पासमें रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६५ तुम्हारे साधु, तीन २ पात्र रखते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६६ तुम्हारे साधु, गृहस्थका बुलावा आनेसे फौरन पात्र उठाकरके जाते हैं और आहार ले आते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

६७ तुम्हारे साधु अपने पास बैठ करके सामायिक करनेकी बाधा देते हैं, यह किस सूत्रमें कहा है ? ।

६८ तुम्हारे मतके उत्पादक भीखुनजी किस गण-कुल संघ (गच्छ) में हुए हैं, यह प्रमाणके साथ दिखलाओ ।

६९ तुम्हारे मतके उत्पादक भीखुनजीने, अग्निको बुझानेमें और कसाईको मारनेमें एक जैसा पाप दिखलाया है, यह किस सूत्रके आधारसे ? ।

७० तुम्हारे साधु, स्त्री-पुरुष इत्यादिके अनेक प्रकारके चित्र रंगी-बेरंगी अपने हाथोंसे लिख करके पानासे पुंठे भरते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ।

७१ तुम्हारे साधु–साध्वि रात्रिके दश–दश–ग्यारह बजे तक चिल्ला २ करके ऊंच स्वरसे गाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ?।

७२ तुम्हारे साधु, एक दिन गृहस्थके घरके भीतरके चोकमेंसे आहार लें, दूसरे दिन, उसी घरके बाहरके चौकमेंसे आहार लें, यह सब विधि किस सूत्रमें दिखलाई है ? ।

७३ तुम्हारे साधु, कच्चा जल पशुका झूठा किया हुआ लेते हैं, यह किस सूत्रके फरमानसे लेते हैं ? ।

७४ तुम्हारे साधु, जब ठंडिल (जंगल) जाते हैं, तब अनेकों श्रावक 'खमा' 'घणीखमा' का चिल्लाहट करते हुए साथ जाते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञा है ? ।

७५ तुम्हारे साधु, राखका पानी पीते हैं, यह किस सूत्रकी आज्ञासे पीते हैं ? ।

इति शम् ।

समाप्त.